कौन भूला सकता है।

और फिर एशिया···

जहां विश्व के चार बड़े धर्मों का अभ्युदय हुआ था, वहां भी कैसे कैसे नर संहार हुए हैं।

बंगला देश में हुए धर्म प्रधान सरकार के अत्याचारों की चर्चा सुनते ही कलेजा मुंह को आता है।

वियतनाम में जो कुछ हो रहा है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

पूर्वी पाकिस्तान के भोले भाले नागरिकों ने उसी देश की सरकार के कारकून तानशाही सैनिकों ने हिंसा का कितना बड़ा तांडव किया उसकी याद बरसों तक नही भुलाई जा सकेगी।

आये दिन न जाने कितने हिंसा तांडव होते रहते हैं!

पशुवत आचारण होता है।

और उसे इन्सान की प्रगति की संज्ञा दी जाती है।

तरह तरह के नाम गठ लिये जाते हैं।

मगर वास्तविकता यह है कि समूचा विश्व हिंसा के चंगुल में फंसा है। दुष्कर्मों की परिणति इसी प्रकार होती है। इसी प्रकार बुरे कर्मो का घेरा पड़ता है। और मानवता सिसकने लगती है।

सवाल उठता है कि यह स्थिति कब तक चलती रहेगी। पूरा विश्व हिंसा के चंगुल में कराह रहा है। सिसक रहा है। मानवता हिंसा के हाथों अपमानित दंडित और पीड़ित है। और विश्व के बड़े बड़े विद्वान मनस्वी सभी तिरनयाम से हो गये हैं। कोई (अहिंसा और विश्व राजनीति) को एक साथ जोडने में सफल नहीं हो पा रहा है। जबकि अहिंसा का अस्तित्व सर्व विदित ही है।

विश्व के एक प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री ने कहा था कि इन्सान की प्रगति के इतिहास की कहानी वास्तव में मारधाड़ और अस्तित्व संघर्ष की कहानी है जिसमें भयानकता और क्रूरता तो अंकित है, मगर उस खूनी गाथा पर छिटके आह के छींटों ने अपार कारुणिक दृष्य उपस्थित कर दिया। हिंसा के इस कालिमा भरे इतिहास पर हमें जब जब प्रगति दृष्टि-गोचर होती है तो अहिंसा की स्वर्ण आभा की झलक दिखलाई पड़ती है। अहिंसा की यह स्वर्णाभा ही वास्तव में विश्व राजनीति का ऐसा सुनहरी पहलू है जिसमें विश्व के कोटि कोटि मनुष्यों की आशा केन्द्रित है।

और यह बात झूठ नहीं है।

मारने वाले से बचाने वाला सदैव बड़ा रहा है। उसे हमेशा अपार सम्मान मिला है और बर्बर युद्धों के इतिहास से प्रति रंजित इतिहास उस समय मुखरित हुआ है जब कुछ महान आत्माओं ने हिंसा के खिलाफ अहिंसा को उजागर किया है। शान्ति के लिये युद्ध को ललकारा है और रिशते घावों पर सेवा तथा शुभ वचनों का मरहम प्रयोग में लाया गया और पाप पंक तथा कर्म कीचड़ में धंसे मानव मात्र को ही नहीं प्राणी मात्र को अहिंसा का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

मनुष्य की सभ्यता का सबसे शानदार दौर वह रहा है जब हिंसा की अहिंसा के हाथों पराजय हुई और अहिंसा ने हिंसा पर विजय प्राप्त की थी। इतिहास के उन स्वर्ण क्षणों का स्मरण मात्र ही मनुष्य मात्र को सत पथ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है और अहिंसा का प्रशस्त मार्ग उन्हें संसार में जीवन जीने का ही मार्ग नही सुझाता अपितु इस जीवन के बाद मृत्यु उपरांत ऐसे कर्मों कि ओर भी संकेत करता है जिवरे करने से मनुष्य, या प्राणी मात्र सभी परेशानियों को

समाप्त करके वास्तविक लक्ष्य की ओर अग्रसर करते हैं। और उस क्षण स्मरण आते हैं जिन धर्म के प्रवर्तकों और प्रवर्तकों, जैन विद्वानों और तीर्थंकरों के भागीरथ प्रयत्न जिन्होंने सबसे पहले हिंसा की अनुपयोगिता को समझा और मानव मात्र के लिये एक नया रास्ता दिखलाया।

अहिंसा का रास्ता।

धर्म का रास्ता.....

जैन धर्म के आदि प्रवर्तक के रूप में भगवान आदि नाथ ने विश्व को एक नया मार्ग दिखलाया था। और उस मार्ग पर चलकर विश्व के अनन्त और असंख्य प्राणियों ने, जीवों ने मोक्ष का परम पद प्राप्त किया था।

और तब से लेकर अब तक न जाने कितने युग बीते, और अहिंसा की ठंडीछांह में पापकी झुलसने वाली गरमी को सहने की शक्ति जीव को प्राप्त होती आई है और होती रहेगी।

संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक, सूरज का प्रकाश जहां तक जाता था, वहां तक भगवान ऋषभ देव का सर्वप्रथम देशना (उपदेश सभा) में दिया गया पावन उपदेश फ़ैला, जिस में कहा गया था।

सम्बोधि !

हां सम्बोधिक प्राप्त करो न।

उसे क्यों नहीं पहचानते। क्योंकि इस जन्म के बाद सम्बोधिका पाना दुर्लभ है। (केवल मनुष्य जन्म ही सुकर्म के लिये उपयुक्त हैं)

जो वितंगय हैं वे नहीं लौट सकते। और मानुस जन्म कभी कभी ही मिलता है। गर्भ का बाल शिशु, जवान और बड़े सभी मृत्यु को प्राप्त हैं' उसी प्रकार जैसे छोटी चिड़िये

खाज का भोजन बनती है। इस संसार में केवल धर्म ही कल्याण कारक है। वह धर्म अहिंसा संयम और तप में सिमटा है। जिस प्राणी का मन सदा धर्म में स्थिर रहता है उसे देव जन भी नमस्कार करते है।

धर्म का प्रमुख तत्व है अहिंसा।

क्यों ?

हम सभी एक दूसरे पर निर्भर है ? मनुष्य पशु, पक्षी ही नहीं समस्त चर-अचर प्राणी एक दूसरे पर निर्भर है और अपनी सत्ता की सुरक्षा करते हुए भी एक दूसरे का पारस्पारिक उपकार करते हैं। सभी सुख चाहते हैं। दुख से भागते हैं, सभी प्राणियों को अपने जीवन से प्यार है। कोई मरना नही चाहता किसी प्राणी की इच्छा के बगैर कोई काम किया जाता है। तो दुख होना स्वभाविक ही है। जब सब सुख चाहते हैं, सब मृत्यु से डरते हैं तो यह वाणी और शरीर द्वारा दूसरों के अथवा अपने प्राणों का अविनाश करना हिंसा है। और ऐसा न करना ही अहिंसा है।

शास्त्रों में कहा गया हैं

मन, वाणी और शरीर इनके प्रभाव से प्रयोजन है कि जब क्रोध मान माया मोह आदि चार कषायों के द्वारा अथवा इनमें से किसी के द्वारा मन वाणी और शरीर जिन्हें तीन योग भी कहा जाता है, अभिभूत हो ऐसी दशा में स्वकर प्राणों का विनाश कर देना हिंसा है और इससे बचना है अहिंसा।

शास्त्र के इन पावन वचनों की अभिव्यक्ति करते हुए जीवन जीने की उस राह की ओर सकेत किया गया है जहां संसार में कोई प्राणी कष्ट नहीं चाहता कोई मृत्यु नहीं चाहता सभी को दुख से भय लगता है। मौत से कम्पन होता

है, अप्रिय बात सुनकर विषाद होता है। दूसरों के लिये इस प्रकार का कारण बनना ही हिंसा हैं। यह एक ऐसी प्रवृति है जिसे छोड़ना ही श्रेयस्कर है। और उसका इस निश्चय से त्याग ही अहिंसा है। इस प्रकार यह प्राणी मात्र में निहित है। और इसका निर्णय करना कि क्या हिंसा है और क्या अहिंसा इसका सीधा और सरल उपाय है कि उसे अपने ऊपर घटा कर देख लो। क्या आप चाहते हैं:—

—आपको मौत के घाट उतारा जाये। (नहीं)
—आपको अपमानित किया जाये। (नहीं)
—आपको त्रास दिया जाये। (नहीं)

अगर आप मरना, त्रास पाना अथवा अपमानित होना नहीं चाहते तो और से भी ऐसा मत कीजिये। संसार के सभी धर्मों की अचाई का सार है अहिंसा।

अहिंसा की जल जन तक, दर और पास सभी जगह पहुंचाने में जैन तीर्थ करो, जैन श्रमण और जैन विद्वानों ने महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है। अहिंसा जैन शास्त्रों में ६० नामों से विख्यात है। ये नाम इस प्रकार हैं:—

१- निर्माण	२- निवृति	३- समाधि
४- शान्ति	५- रीति	६- कांति
७- रति	८- सूत्रांग	९- व्रत
१०- तृप्ति	११- दया	१२- विभूति
१३- शान्ति	१४- सम्पन्न वारावर	१५- महान्त पूज्य
१६- बौधि	१७- बुद्धि	१८- धृति
१९- समृद्धि	२०- वृद्धि	२१- ऋद्धि
२२- पुष्ठि	२३- स्थिति	२४- नन्दी
२५- कल्याण	२६- भद्रा	२७- विशुद्धि
२८- लब्धि	२९- विशुद्धि दृष्टि	३०- मंगल

३१- प्रमोद	३२- विभूति	३३- रक्षा
३४- सिद्धवास	३५- आशवास	३६- केवली स्थानक
३७- शिव	३८- समिति	३९- शील संयम
४०- यज्ञ	४१- आयतन	४२- शीलधर
४३- संवर	४४- गुप्ति	४५- व्यवसाय
४६- सन्तोष	४७- अध्ययन	४८- अप्रमाद
४९- आश्वास	५०- विश्वास	५१- सबको अभय
५२- अनाघात	५३- निर्मलता	५४- पवित्रता
५५- श्रुति	५६- पूजा	५७- तरणी
५८- निर्मला	५९- प्रभासका	६०- विमला

इसके विपरीत हिंसा करने वाले व्यक्ति को विशिष्ट हिंसा करने पर वह विशेष संज्ञा दी जाती है जो इस प्रकार है:—

१—प्राणिघात: पापी	२—शरीर जीव नष्ट करने वाला
३—अविश्वासी	४—आत्मघात: आत्मघाती
५—अकृत्य	६—घात
७—बंधन	८—भारलादना
९—उत्पात उपद्रव	१०—अंग भंग और इन्द्रियों को नष्ट करना
११—खेती सम्बन्धी हिंसा	१२—आयु, बल या ताकत कम करना
१३—मृत्यु दण्ड देना	१४—असंयम
१५—हमला	१६—प्राणों का व्युपरमण
१७—परभक संक्रामण	१८—दुर्गति
१९—पाप कोण	२०—पापल
२१—शरीर का फेदन	२२—जीवितान्तकर
२३—भयंकर	२४—पापकारक, दुख एवं भयंकर

२५–कठोर २६–परितापकर
२७–विनाश २८–विपतता
२९–लोप ३०–गुण विघटन

इससे करने वाली को इस प्रकार की संज्ञा मिल जाती है :

१– पापी २– चन्द्र
३– रुद्र ४– क्षुद्र
५– साहसिक ६– अनार्थ
७– विघृण ८– नृशंस
९– महाभय १०– प्रतिभय
११– अतिमय १२– भायनग
१३– त्रासक १४– अनार्थ कार्य करने वाला
१५– उदवेगकर १६– निरपेक्ष
१७– अधर्मी १८– निर्पिपास
१९– नि० करूण (निर्दयी) २०– नरकावास विघनागमन
२१– मौहमय प्रर्वत्तक २२– मरण वैमनस्य

संज्ञाये इस बात की प्रतीक है कि शुरू से ही हिंसकों को, हिंसा करने वालों को उनकी हिंसा के बावजूद बड़ी हिकारत की नजरों से देखा जाता है। या तो उन पर तरस खाया जाता हैं अथवा उन्हें देय माना जाता है।

०—०

२ | हिंसा का आविर्भाव

जब धरती की ओर छोर नहीं था तब भी और अब जब धरती का एक एक कौना नप चुका है, तब जब भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी समारोह का श्री गणेश हो रहा है अहिंसा की आवश्यकता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। और सच बात तो इतनी ज्यादा मार्मिक है कि सभी स्वीकार करते हैं कि जितना अहिंसा की आवश्यकता आज के युग में है उतनी कभी नहीं रही।

क्यों ?

शास्त्रों का मत है कि यूं जीव देव, नरक, त्रिमंच गतियों में भटकता रहता है मगर आवागमन के चक्र से छुड़ाने का श्रेय केवल मनुष्य गति को ही है और आज मनुष्य अपने चिन्तन और ज्ञान के सहारे जितना विवेक शील हो चुका है उतना ही उत्कृष्ट ज्वलनशील भी हो गया है। आज के युग में मानव जाति उस मोड़ पर पहुंच गई है जिसकी एक राह विनाश की राह है और दूसरी राह निर्माण की राह। मानव जाति देवत्व की ओर है उससे अधिक तामसी वृति की ओर ऐसे समय सबसे बड़ी आवश्यकता पड़ती है अहिंसा की। यही कारण है कि संसार के सभी धर्म जो मानव कल्याण की गुहार से प्रेपित है अहिंसा पर आधारित है। बौद्ध धर्म के प्रणेता की कथा तो सुनी ही होगी। जब सिद्धार्थ बालक थे तब ही उन्होंने अपने चचेरे भाई के बाण से घायल हंस पर इसलिये अपना अधिकार सिद्ध किया था कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है।

और अहिंसा हिंसा के प्रतिकूल होकर भी दो कार्य करती है। एक तो हिंसा न करना, दूसरा हिंसा न होने देना। इस प्रकार अहिंसा मान आचरण की वह धुरी है जिस पर हम संसार के समस्त सिद्धान्त समर्पित कर सकते है। भारत की तो परम्परा ही यही रही है। उसने हिंसा के स्थान सदैव अहिंसा से आसीन किया है और पूरे जोर शोर के साथ सदैव इस बात पर बल दिया है कि अहिंसा मानव मात्र परम धर्म, परम कर्तव्य एवं परम उपलिवध हैं। अत उपलिब्ध से अब तक मनुष्य ने खोथा है वह पशु बन गया है, पशु से बदतर होते जा रहे हैं। हमारे इन्हीं विचारों की पुष्टी करते हुए एक विशिष्ट विद्वान ने लिखा है।

मानव काल की अनेक घाटियों को पार कर आज तक पहुंचा है। इन घाटियों के पार करने से उसे अनेक लाभ मिला है। अति दुर्गम पथों की पार करने के लिए ये ऐसे उपाय सोचने पड़े है उनके समक्ष जो कठिनाइयां आती गई उनका समाधान पाने के लिए उसके मन में सदा ही एक अदम्य लालसा रही है और इस लालसा से उसने पथों में परिवर्तन किया है, उसकी मनोवृति में परिवर्तन हुआ है। इस दृष्टि से आज हम यह विश्वास पूर्वक कहने की जो स्थिति अभी मानव काल की आई थी वह आज नहीं है, उसमें वहुत से परिवर्तन हो चुके है, उस समय से आज उसका रूप बदल गया है, रुचि बदल गई है, रहन सहन और परिवान बदल गया है, आवास और सत्संग बदल गया है। आवश्यकताओं और उसकी पूर्ति के साधन बदल गये हैं। कुल मिलाकर जीवन के मूल्य और दृष्टि बदल गये है।

जैन धर्म में काल चक्र की अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दो रूपों में विभाजित किया गया है। इन में ये प्रत्येक के

छः विभाग स्वीकार किये गये है:

१– स्वुखमा सुखमा   २– सुखमा   ३– सुखमा दुखमा
४– दुखमा, सुखमा   ५– दुख   ६– दुख सुख

काल का यह चक्र निरन्तर घूमता रहता है। इन बारह कालों का एक पूरा चक्कर कल्प कहलाता है। प्रकृति स्वयं ही एक कल्प के आधे भाग में निरन्तर उत्कर्षण शील बनी रहती है। पश्व्यी की आयु, रूप स्वातम सभी से उत्कृष्ण होता रहता है। वह कल्प उत्सर्पिणी कहलाता है जिसमें आयु आदि में निरन्तर हीनता बढती है वह अवसेर्पिर्णी कल्प कहलाता है। आज कल अवसर्पिर्णी कल्प दुखमा केन्द्र से गुजर रहा है।

एक कल्प व्यतीत होने पर भारी परिवर्तन होते हैं और तब दूसरे कल्प का प्रारम्भ हो जाता है। काल इसी सृष्टि और विनाशकारी धुरी पर निरन्तर चक्र की तरह घूमता रहता है। प्रकृति सदा यूं ही रूप परिवर्तन करती है। प्रकृति का सम्पूर्ण विनास कभी नहीं होता। केवल रूप परिवर्तन किया करती है आज जहां रेगिस्तानी राजस्थान है वहां कभी सागर हिलोरे ले रहा था। जहां आज हिमालय खड़ा है वहां भी कभी समुद्र लहलहा रहा था। इन्हीं परिवर्तनों को लेकर प्रकृति है। विना शाकीं नींव पर सृजन खड़ा है। विनाश और निर्माण एक ही सिक्के के दो पहलू है। प्रकृति विनाश और निर्माण की लीलाओं ने भी अपने तत्वों को लेकर सदैव बनी रहती है।

परिवर्तन के इस चक्र में कहां आदि है और कहां अन्त यह कोई नहीं कह सकता। किसके घूमते रहने वाले चक्र में और अन्त सम्भव भी नहीं है। किन्तु घड़ी के डायल में मुंह बना रहने के बाद में छः बजे तक नीचे की ओर जाती है और उसके बाद बारह बजे तक ऊपर की ओर जाती है। काल को हम एक दो तीन बजो में बांध नहीं सकते, वह तो अखन्ड और अविभाज्य

है। किन्तु व्यवहार की सुविधा के लिये हम एक दो तीन से काल का एक व्यवहारिक विभाग कर सकते हैं। इसी प्रकार व्यवहार की सुविधा के लिये एक कल्प भी, उसके दो भेदों की और उसके भी फिर छः छः भेदों की कल्पना की गई है। और इस तरह कल्प का प्रारंभिक काल सुविधा के लिये सृष्टि का आदिकाल और उस काल में रहने वाला मानव आदि मानव कहा जाने लगा है।

जैन मान्यता के अनुसार मनुष्य समाज के प्रारम्भिक और अविकसित मानव रूप को 'युगलिया समाज' के नाम में सम्बो-धित किया गया है। उस काल में एक मां के गर्भ से सह जाता पुत्र पुत्री ही व्यस्क होने पर पति पत्नी बन जाते हैं। वे अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वृक्षों पर निर्भर रहते थे जिन्हें कल्प वृक्ष कहा जाता था। उनके मानसिक विकास का यह शैशवकाल था। अतः उनमें न पाप की वासना पाई जाती थी और न धर्म का विवेक। ये धर्म और पाप दोनों में निर्लिप्त थे। फिर भी वे निर्विकार थे। उनका जीवन सन्तोष, विवेक, और शान्तिकालीन जीवन था। आवश्यकतायें उनकी सीमित थी और आवश्यकता पूर्ति के साधन असीम थे। वह एक वर्ग ही न समाज का काल था। मानव विकास का यह उषाकाल था। जैन वाङमय में एक आद्य मानव जीवन व्यवस्था का वर्णन मिलता है। यह काल भोग युग कहा गया है।

किन्तु मानव मानस विकास की ओर बढ़ रहा था। उस में सूर्य और चन्द्र को देख कर उत्सुकता भरी जिज्ञासा जाग उठी। आकाश मंडल उसके मन में विस्मय पैदा करने लगा था। प्रारम्भ में मानव और पशुओं में संघर्ष का कभी प्रसँग नहीं आता था। किन्तु अब ऐसे प्रसंग आने लगे, जब

पशु और मानव संघर्ष हो उठता। मानव जानता तक न था कि आत्मरक्षा का क्या उपाय है। किन्तु धीरे धीरे ये संघर्ष सामान्य होने लगे। मानव के खुन मुंह लगने पर सिंह आदि स्वयं आक्रमण करने लगे। आवश्यकता ने अनुसंधान को जन्म दिया। ये अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिक उस युग की भाषा में मनु कहलाते थे। उस युग के इन महान वैज्ञानिकों में १४ सर्वाधिक प्रसिद्ध हुये है। उन्होंने मानव की जिज्ञासा शान्त की। आत्मरक्षा के लिये दण्ड और पाषाण के शस्त्रों का भी आविष्कार किया और उनके चलाने के उपाय बताये थे।

भोग युग का अब आधा काल बीत चला था। मानव के समक्ष एक बड़ा संकट आया। अब तक मानव अलग अलग रह रहा था। पशुओं के उपद्रवों के कारण जंगल का कुछ भाग काट कर अब कुछ संघबद्ध रहने लगा उसका परिणाम यह हुआ कि पशुओं से उसे कुछ ज्ञान मिल गया, किन्तु अब पारस्पारिक संघर्ष उठने लगे। वृक्ष कुछ कम पड़ने लगे तो अधिकार की भावना का उदय हुआ, तब समाज के प्रमाखु पुरुष मनु ने हर एक के लिये अलग अलग चिन्ह बना दिये गये। लोग क्या पशुओं के भय के कारण वन के भीतरी आंचलों में घुसने का साहस नहीं करते थे तो हाथी को पकड़ना और उस पर सवारी करना भी सिखाया।

इसके बाद बालक का नामकरण उसका मनोरंजन आदि अनेक बातें सिखाई। तब एक बार मानव के समक्ष आकस्मिक संकट आ उपस्थित हुआ घोर वर्षा हुई नदियों में बाढ़ आ गई सब कहीं जल ही जल दीख पड़ने लगा। उस समय मानव को उससे बचने का उसमें निकलने और नदी से पार जाने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। मनुओं ने पर्वत पर चढ़कर जल से अपनी रक्षा करने वर्षा से बचने के लिये छाता और नदी पार

जाने के लिये नाव बनाने की विधि का आविष्कार किया।

अब भोग काल का अन्त निकट रह गया था। वृक्ष समाप्त हो रहे थे। उससे आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। वर्षा से चाव के कारण पृथ्वी पर नाना प्रकार की वनस्पतियां उगने लगी थी, फल वाले वृक्ष होने लगे किन्तु मानव काल के इस चरण में भी इतना अधिक अविकसित था कि वह उनका उपयोग करना नहीं जानता था। तब अंतिम मनु नाभि राय के पुत्र ने मानव को वनस्पतियों और फलों का उपयोग करना सिखाया।

इस प्रकार भोग भूमि का मानव विकास की ओर निरन्तर बढ रहा था। किन्तु उसके जीवन में दुख नामक अनुभूति नहीं आई थी उसे किसी प्रकार के धार्मिक, सामाजिक और नैतिक बंधनों में जकड़ने लायक परिस्थिति अब तक उत्पन्न नहीं हो पाई थी। वास्तव में यह स्वर्ण काल था।

इस जैन मान्यता का समर्थक महाभारत, दीघनिकाय सुत्त निपात आदि भारतीय ग्रन्थों तथा इन्डोनेशिया, बेबोलोनिया और सीरिया की आदि मानव सम्बन्धी प्राचीन सभ्यताओं से भी होता है।

वास्तव में इस युग की संस्कृति वन संस्कृति थी और सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से कुछ भी रहा हो, आहार के मामले में योग का मानव वृक्षों पर निर्भर रहता था। वह निश्चित रूप से शाकाहारी था। अभी तक उसे सृष्टि का ज्ञान न था। अत: उसके लिये खाना पकाने का प्रश्न नहीं था। वह न आग का प्रयोग जानता था। और नहीं शिकार करने अथवा शिकार का पकाने का ही उसे ज्ञान था वस्तुत: उसकी दशा तो अबोध बालक जैसी थी जैसे बालक मां की छाती से चिपका रहता है वैसे ही वह पेड़ों और फलों से अपनी उदर पूर्ति करता था।

बाईबिल में आदम और हव्वा को बाग में सुखउपयोग करते हुये शाकाहारी जीवन करने वाला बताया गया है।

इन सब के अतिरिक्त अब तक जो पुरात्व सम्बन्धी अन्वेषण कार्य हुये हैं उसके आधार पर यही सिद्ध होता है कि आदि मानव शान्ति प्रिय और शाकाहारी प्रागतिहासिक काल के खनन के फल स्वरुप भारत के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा तथा मिस्र और वेबीलोलिया में चार पांच हजार वर्ष प्राचीन नगरों और उस काल की सभ्यता पर प्रकाश पड़ा है। इन नगरों में उस काल की सभ्यता के अनेक अवशेप मूर्तियां सिक्के वर्तन आदि उपलब्ध हुये हैं। किन्तु कोई भी युद्ध के शस्त्र अस्त्र नहीं मिले, न ऐसे ही कोई चिन्ह ही प्राप्त हुये है जिससे यह प्रगट होता कि उस समय सैनिक वर्ग था और न दुर्ग ही मिले है।

इस प्रकार यह बात सिद्ध हो जाती है मनुष्य का स्वभाव वास्तव में अहिंसक हैं मगर जैसे जैसे वह संसार के प्रति अधिक आसक्त होता गया, उस पर हिंसा हावी होती गई। हिंसा की प्रथम शुरुआत अज्ञान से हुई, और फिर जैसे जैसे दुर्बल व्यक्तित्व समाता गया वह हिंसक होता गया। उसका विवेक फिर उठ गया। मगर अब फिर एक ऐसा अनुकूल अवसर आया है कि हम अपने अंतर में से हिंसा की दुर्बलता निकाल कर अहिंसा की महान शक्ति को अपने अंतर में संजीले।

जैसे जैसे भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी का समारोह निकट आता जा रहा है भारत में, उनके जन्म देश में उनकी एवं उनके सिद्धान्तों की धूम मचती जा रही है। और राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भारत के सिद्धान्त विजय की पताका फहरा रहे है। भारत की धरती को गर्व है कि इसे अहिंसा जैसे पावन सिद्धान्त प्रवर्तकों अधिकारियों और तपस्वी तीर्थ कणों का पावन स्पर्श मिला। वे

इसी मिट्टी में पैदा हुये, खेले, इसी पुण्य धरती पर उन्होंने विश्व को सुखकर विश्व बनाने का आह्वान किया ।

जीवन का सबसे पावन क्षण वह होता है जब जीव आत्मा के साथ बंधे कर्मों से मुक्त होकर आवागमन से मुक्त होकर अरहंत होता है, मगर इससे महत्वपूर्ण क्षण वह होता है जब हम संसार में अपनी दुर्बलता का बोध कर सबलता की ओर अग्रसर होते है । और हिंसा मनुष्यमात्र की सबसे बड़ी दुर्बलता है । जैसा कि यह निश्चित हो चुका है कि इस दुर्बलता का सबसे महत्वपूर्ण कारण अज्ञान और आत्मगेय ही रहा है । जिनमें अन्ध विश्वास जुड़ते आ रहे हैं । सुख की तलाश में इसमें के सुख छीनने की प्रवृति को अपनाते जा रहे हैं । उस प्रवृति का अन्त होना ही चाहिये और इसके लिए आवश्यक है कि हम अधिक से अधिक हिंसा का त्याग करें । हिंसा समर्थ व्यक्तित्व नहीं अधूरे व्यक्तित्व की परिचायक है, और अधूरा व्यक्तित्व न तो इस लोक में सुख पाता है और न उस लोक में सुख पा सकता है ।

सबल और सफल व्यक्तित्व में निम्न गुण होते हैं—

—आत्म निर्भरता ।

—निर्भीकता ।

—सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की भावना से ओत प्रोत ।

और इसकी आधार-शिला है हिंसा की विदाई और अहिंसा का स्वागत । अहिंसा को जीवन में अपनाना ही सबसे महत्वपूर्ण कदम है ।

— —

३ | अहिंसा: हमारा गौरव

प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का कथन है कि हाल की लड़ाई में बांगला देश का अभ्युदय और पाकिस्तान को करारी हार हमारी नहीं हमारे सिद्धान्तों की विजय है। और सिद्धान्तों में सबसे बड़ा सिद्धान्त यह है हमारी निष्ठा रक्त पात में नहीं है। हमारा विश्वास हिंसा में नहीं है। हम आतंक की स्थिति नहीं चाहते। हम चाहते है शान्ति। एक ऐसा सद्-भाव पूर्ण वातावरण जिसमें सब मिल जुल कर रहें। और इसी कारण हम विजयी भी हुये हैं। हमारे सिद्धान्त जीव है। क्योंकि हम आतंक को नहीं आश्रय को महत्व देते हैं। मारने वाले से बचाने वाला सदैव बड़ा होता है।

आपने सुना होगा बौद्ध धर्म के प्रर्वतक बचपन के सिद्धार्थ ने अपने पिता के समक्ष उस हंस पर अपना दावा पेश किया था जिसे उसके चचेरे भाई ने बाण से घायल किया था, मगर उन्होंने उस घायल हंस की सेवा करके, उसे जीवन दान दिया था। और हिंसा के अहिंसा के हाथों मुंह की खानी पड़ी थी। हिंसा को तब भी पराजित होना पड़ा था। और आज भी पूरे भारत उपमहाद्वीप में विश्व की एक बड़ी शक्ति को पराजय का ऐसा मुंह देखना पड़ा है कि पिछली पच्चीस साल की पूरी साख समाप्त हो गई है।

अहिंसा के सम्मुख हिंसा हारती आई है। लेकिन आपने उस लोक कथा को भी सुना होगा कि नेकी और बदी एक बार

संयोग से नदी में नहाने गई।

नेकी थी सरल और सहज।

मगर बदी थी चालाक और धूर्त। उसने नेकी को पानी में फ़ंसाये रखा और जब नेकी स्नान करने में व्यस्त थी तो चुपके से से पानी से बाहर आई उसने नेकी के कपड़े पहने और लोगों में फैल गई।

बेचारी नेकी उसी दिन से निवस्त्र हो गई उसका आकार हीन हो गया।

नेकी आज भी इसी कारण लोगों के अन्तर में होते हुए भी बाहर नहीं आ पाती और बदी नेकी का रूप धारण करके लोगों की आत्मा पर घूम रही है।

यह युग है विवेक का युग। विज्ञान का युग।

इस युग की आवाज सुननी ही होगी और जागना होगा कि कैसे हिंसा के चंगुल से अपने आपको बचाया जा सकेगा और मानवता को उस पथ का राही बनाया जावे जो मुक्ति और मोक्ष की ओर जाता है। इसीलिये उस विवेक को अपने जीवन का अंग बनाना होगा, जिसका नारा है। उठो और जागो।

वर्बर साम्राज्य हो या आतंक फैलाने वाली सेनाओ से सजी उनकी स्वार्थ पिपासा हो अथवा हिंसा उन्हीं का विनाश करती है इसकी सबमें नयी मिसाल है भारत के पूर्व में बंगला देश का अभ्युदय। वहां की जनता ने मुलाधिकारों का दमन करने के लिए पाकिस्तानी तानाशाही ने इतना सैनिक साज सामान खड़ा कर रखा था कि कोई भी राष्ट्र सालो लड़ सके मगर हिंसा में आतंक होता है भय होता है, लेकिन स्थिरता नहीं होती। आत्मबल से दुर्बल सैनिक तानाशाही के पैरों तले की धरती खिसकने लगी और आखिर हमारे सिद्धांतों की,

भारत के सिद्धान्तों की विजय हुई थी।

वे क्या सिद्धान्त है जिनकी धूम आज भी है और आगे भी रहेगी। वे सिद्धान्त विश्व के वे माने हुए सिद्धान्त है जिन पर संसार कायम है। आज तक किसी महापुरूष ने इस बात का प्रतिवाद नहीं किया कि संसार में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को जीने का अधिकार नहीं है। कौन ऐसा महापुरुष है जो इस सत्य से मुंह चुरा ले कि हर व्यक्ति को अपना अपना सुख पाने का अधिकार नहीं है। किस को यह अधिकार नहीं है कि वह संसार के किसी प्राणी को दुख दे, त्रास दे, उसके दुख का कारण बने और या ऐसी स्थिति पैदा करे कि वह किसी को दुख पहुँचे।

जियो और जीने दो का सिद्धाँत इस सादगी भरे आचरण पर निर्भर करता है कि हमारा लक्ष्य इस संसार में रहकर ऐश्वर्य एकत्र करना नहीं है। अपितु हम सभी की स्थिति रेलगाड़ी में सफर करने वाले यात्रियों के समान है। जिन्हें किसी न किसी रास्ते से अपनी मंजिल पर पहुंचना हैं।

मंजिल क्या है ?

कमोवेश सभी लोक धर्म यह स्वीकार करते हैं कि हम किसी महान शक्ति पुंज के अंश है। और किन्हीं कारणों से हम उस महान शक्ति से अलग हो गये हैं। इसका कारण हमें इस संसार में आना पड़ा है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार और कवि शैक्सपीयर ने कहा है—

संसार एक रंग मंच है। हम सभी इस रंग मंच पर आने वाले अभिनेता और अभिनेत्री हैं।

कोई राजा बनता है कोई भिखारी। मगर यहां तो अपना अभिनय पूरा करता है, भूमिका निभानी है और चल देना है।

केवल शेक्सपियर ही क्यों हर चिन्तन ने एक ही बात कही है सभी यही स्वीकार करते हैं कि संसार तो एक सराय है। जहां हर मुसाफिर आता है, ठहरता है और चला जाता है।

इस प्रकार इस संसार में सांसारिक सुख में आस्था रखने वाले को सहज रूप से बुद्धिमान स्वीकार नहीं किया जाता। मगर इसके बावजूद जैसा कि हमने कहा है कि वही के अन्दर जनमानस से सहज आकर्षण दिखलाई पड़ता है और धीरे धीरे जिस परिवेश में हम आये हैं उनमें हिंसा को ही बढ़ावा मिला है। के और इस कारण पूरा इतिहास हिंसा का एक भयंकर दस्तावेज बनकर रह गया है।' मगर इसके बावजूद अन्धेरा चाहे कितना घनेरा हो, उसे भेदने के लिए प्रकाश की एक नई किरण पर्याप्त है और अहिंसा से बढ़ कर इस संसार में कोई ऐसा प्रकाश नहीं जो मानव मात्र के सुख का विधान कहे। उस सुख की व्यवस्था करे जो मनुष्य से चिर सुख प्राप्त करने के सहायक होती है। संसार का सम्पूर्ण इतिहास इस बात का गवाह है कि हिंसा से सुख नहीं दुख मिलता है। परेशानी मिलती है। संसार के प्रारम्भिक विकास में जब मनुष्य देवी आपत्ति और पशुओं के खतरे के कारण कबीरों में रहता था तब जो रक्तपात होता था वह भी सुखदाई नहीं हुआ लेकिन रक्तपात होता रहा। हिंसा के कदम उठते रहे। और मनुष्य पशु से गया गुजारा आचरण करता रहा।

याद कीजिये इतिहास के वे कठोर और त्रास पूर्ण क्षण जब स्वार्थ, इर्षा और मात्सर्य के नाम पर हिंसा का परवान चढ़ाया गया था, जब चन्द शासकों और साम्राज्य वादियों के शासकों के मनोरंजन के लिए खोपड़ियों की मशाल जलाई

जाती थी। मगर उन शासकों को भी संसार से विदा लेनी पड़ी। आज तो महज उनके जालिम कामों की याद शेष है और उनके किये गये काले कारनामे हमें बार बार इस बात की प्रेरणा देते हैं कि हम विनय और विवेक में पुन: सोचे और देखे हिंसा के क्या क्या विकृत रूप सामने आये है और हिंसा घन घोर अंधेरे में किस प्रकार मानवीय संवेदना सिसक कर गई है। इस युग में भी और उस युग में भी अहिंसा एक प्रकार की स्वर्ण रेखा थी और जय जो यात्रा किसे कम महत्वपूर्ण नहीं थी। क्योंकि हमेशा ही ऐसा परिवेश नहीं रहा है यह सच है सृष्टि अनादि और अनन्त हैं। केवल प्रकृति नारी की तरह रूप बदलती है, मगर आवागमान का चक्र न कभी समाप्त होता है न हुआ है। आज संसार जिस रूप में है उस रूप में आते आते नई युगों से गुजरना पड़ा है, जिसे आग रहित पाषाण युग आग सहीत पाषाण युग, धातु युग, आसेट युग, कृषि युग के बाद विज्ञान युग में आया स्वीकार किया जाता है। इस दौर में संसार का इतिहास कबीले, संघ, प्रजातंत्र, साम्राज्यों, और सामंती युग से गुजरकर उस सन्धि के वेला में आया है जब समाजवादी प्रजातंत्र का अभ्युदय हो रहा है।

देखा जाये तो पूरा इतिहास हिंसा के काले कारनामों का एक क्रूर दस्तावेज है जिसमें न जाने कैसे कैसे भयावने चेहरे है निर्दोष मानवों की आहों, उनके लहु से लगपथ वहक होता है, जिसमें बार बार मनुष्य को पशु से बदतर करने से वाक्य किया है।

हिंसा का सबसे पहले सूत्रपात उस वक्त हुआ होगा जब पेड़ों की संख्या कम रह गई होगी और किसी वक्त पशु ने मानसं मांस का चख कर अपना हाथ बढ़ाया होगा और मनुष्य को आत्म रक्षा के लिये हिंसा कदम उठाना पड़ा होगा और

मनुष्य को आत्मरक्षा के लिये हिंसा का कदम उठाना आवश्यक पड़ा होगा। हो गया, आत्मरक्षा की प्रवृत्ति हिंसा ने दल बनाकर रहने को बाध्य किये। मानव को अपनी सत्ता स्थिर रखने के लिये अथवा किसी दूसरे की सम्पत्ति हथियाने की साजिश में हथियार उठाने, लड़ने झगड़ने के लिए भी बाध्य किया होगा।

पर मनुष्य का महज स्वभाव हिंसात्मक न होकर अहिंसा पूर्ण जीवन का चितेरा है। उसका स्वभाव हिंसा नहीं अहिंसा चाहता है। वह जो स्वय सुख चाहता है वह अन्तर में कभी किसी को दुख देने की बात सोच भी नहीं सकता मगर इसके बावजूद हिंसात्मक दमन से पूरा इतिहास एक काला दस्तावेज बन गया है। हिंसा की इस प्रवृतियों के कारण रहे हैं :

—क्रोध

—अभिमान

—कपटा

—स्वार्थं

—अज्ञान

शस्त्रों का कथन है कि निश्चय से कपाय आदि पापों के परिणाम से मन वचन काय के योगों द्वारा अपने तथा परले भाव और द्रव्य रूप दो प्रकार के प्राणों का घात करना ही हिंसा कहलाता जब किसी के मन में वचन में अथवा काम में शारीरिक क्रोधादिक पाप प्रगट होते हैं तो उसके निजि शुद्धोपयोग रूप में भाव प्राणों का घात तो पहले ही हो जाता है। और सर्व प्रथम जीव अपने भाव प्राणों के घात की हिंसा का भागीदार बनता है। इसके अनन्तर पाप की तीव्रता से वह द्रव्य हिंसा पर उतारू होता है जो इस प्रकार की क्रियाओं से सम्पन्न होती है जैसे—

—कषाय तीव्रता

—दीर्घ स्वासादिक

—हाथ पांव द्वारा

—अंगों में पीड़ा पैदा करना

इस प्रकार मनुष्य द्वारा एक समय में जिन चार प्रकार से हिंसा सम्पन्न होती है वह एक प्रकार से हिंसा की चार स्थितियां ही हैं।

जैसे—

एक: स्वभाव हिंसा: अपने

दो : स्वद्रव्य हिंसा : अपने भाव घातों से अपना द्रव्य घात

तीन : परभाव हिंसा : दूसरे के भावों का घात

चार : पर द्रव्य हिंसा - और फिर द्रव्य घात

हम सब जानते हैं कि जीव के अपने शुबोपयोग रूप प्राणों का घात रागदिक भावों में होता है जो इस प्रकार है ?

१ राग	२ द्वेष
२ मोह	४ काम
५ मान	६ माया
७ लोभ	८ हास्य
९ भय	१० शोक
११ जुग्युसा	१२ प्रमाद

इन भावों का निराकरण ही अहिंसा है।

आतंक और क्रुर भावनाओं से ओतप्रोत ऐसा थरथरा देने वाला वातावरण जिसको सुनकर ही रोंगटे खड़े हो जाये भय और विषाद का वातावरण बने और उनसे प्रभावित मानव समाज त्राहि त्राहि कर उठे।

इतिहास का रथ कालचक्र की यात्रा करता हुआ आगे और आगे बढ़ता ही जाता है: मगर साथ ही अंकित करता जाता है वह क्रूरकाले कारनामें जिन्होंने पूरे मानव समाज को थरथरा कर रख दिया था और तब आये थे तीर्थंकर। तीर्थंकरों की धर्म देशना से हिंसा पीड़ित जीवों को सुख और शांति का मार्ग प्रशास्त हुआ और जीव ने जाना कि क्षणिक सुख के सम्मुख ऐसा भी सुख है जो चिरस्थायी है। जो सांसरिक सुख नहीं है। सारे जैन तीर्थंकर के अहिंसा मूलक धर्म का ही उपदेश करते है उनके सिद्धान्तों में किसी प्रकार बुनियादी अन्तर नहीं है। फिर भी हर तीर्थंकर काल में परिस्थिति विभिन्न रही उन्होंने किस प्रकार अहिंसा का पावन उपदेश दिया उनको जानने के लिये हमें केवल चार तीर्थंकरों की ही झांकी प्रर्याप्त रहेगी। वे तीर्थकर हैः—

१ आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव।
२ भगवान नेमिनाथ।
३ भगवान पार्श्वनाथ।
४ भगवान महावीर।

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव,

सृष्टि के आरम्भ' को जब हम कहते है तो हमारा अभि

प्राय वास्तव में कल्प के उस विशेष समय से होता है जब सृष्टि अपना प्रारम्भिक रूप रचती है उस संस्कृति को हम कह सकते हैं वन संस्कृति। चारों ओर वन और वन में वृक्ष।

उस समय सभी जीवों का आधार था वृक्ष। जीव पेड़ के पत्ते खाता, पेड़ की छाल पहनता, पेड़ की छांह में सोता और पेड़ पर ही बसेरा करता। शास्त्रों के अनुसार यह काल ऐसा था:—

जैन मान्यता है कि भरत खण्ड में एक समय ऐसा भी था जब मानव सभ्यता विकसित नहीं हो पाई थी। तब जो सस्कृति यहां पर थी। एक प्रकार से वह बन सस्कृति थी। यहां विभिन्न प्रकार के वृक्ष होते थे जिन्हें कल्प वृक्ष कहा जाता था लोग उनसे अशन वसन, पान प्रकाश सब कुछ पाते थे। इस समय प्रकृति में कुछ ऐंसी वेक्रिय था कि माता के गर्भ से दो बालक युगल ही उत्पन्न होते थे। इन दिनों के लोगों को न पापों का बोध था, न धर्म का बोध था। यह समय भोग भूमि युग कहलाता था।—किन्तु भोग भूमि का यह युग अब समाप्त हो रहा था। कल्प वृक्ष कम होने लगे थे। व्यक्तियों की आवश्यकतायें पूरी न हो पाती थी इस समय के व्यक्तियों में जो प्रमुख और समझदार मनुष्य होते थे वे मनु कहलाते थे। वे मनुष्यों की कठिनाइयों का समाधान करते थे। ऐसे मनु चौदह हुये। चौदहवे मनु का नाम नाभिराय था और उनकी पत्नि का नाम मरू देवी। नाभिराय अयोध्या के अधिपति थे। नभिराय और मरू देवी से जो सन्तान हुई उसका नाम रखा ऋषभ देव। भगवान ऋषभदेव के कुछ उपनाम इस प्रकार है :

१- हिरण्य गर्भ — २- प्रजापति
३- चतुराना — ४- स्वयंभू
५- आत्मभू — ६- सुरश्रेष्ठ

७ - परमेष्ठी ८ - पितामह
९ - लोकेश १० - अज

इस आदि तीर्थं कर को इस बात का श्रेय है कि इन्होंने सर्वप्रथम लोगों को दान दिया वरममार्ग की शुरूआत की थी। उस काल को हम उस संधि वेला को संज्ञा दे सकते हैं जब एक ओर कल्प वृक्ष समाप्त हो रहे थे। आवश्यकताओं की पूर्ति की समस्या होनी कठिन हो रही थी। उदार पूर्ति न होने के कारण आप जनता में विवाद होते शुरू हो गये थे। उस समय की दुखी जनता जब नाभि राय के समक्ष अपनी समस्या लेकर आई तो नाभिराय ने उन्हें भगवान ऋपभ देव के पास भेजा।

भगवान ऋपम देवी के गर्भ में आने से छ. माह पूर्व नाभिराय के महलों में हिरण्य वृष्टि हुई थी इस कारण उनका नाम हिरण्य गर्भ भी हो गया था। उनमें गर्भ में आने के पूर्व माता मरू देवी को जो सपना आया था कि उनके मुंह में एक विशाल वल प्रवेश कर गया है। अतः भगवान ऋषभ देव का लाक्षणिक चिन्ह वृपभ हो गया था और नाम भी ऋषभ देव पड़ गया था। नाभिराय के इस यशस्वी पुत्र का विवाह कच्छ और सुकच्छ की पुत्रियों से हुआ था। जिनके नाम क्रमशः यशस्वती और सुनन्दा थे।

बालपन से ही जन कार्य में रूचि लेने के कारण इन्होंने काफी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी। जब दुखी जनता उनके समक्ष आई तो उन्होंने कहा।

अब भोग भूमि का युग समाप्त हो रहा है। कर्म भूमि का युग शुरू हो गया है। अब तक आप लोगों को वृक्ष से इच्छित पदार्थ मिल जाते थे। मगर अब आपको काम करना होगा तभी आपका पेट भर सकेगा। उन्होंने स्वयं वे उगे इच्छुओं

का रस निकालकर पीने की विधि का आविष्कार किया और इस प्रकार वे इच्छवाकु कहलाते और धीरे धीरे इच्छवाकु उनका वंश नाम रखा गया।

उस वक्त की स्थिति ऐसी थी कि जनता कार्य अनभिज्ञ थी और जनता को आम जनता की आवश्यकता को छः पावन कर्म सिखलाये थे, वह कर्म थे:—

१– असि: शास्त्र निर्माण और उसके प्रयोग की विधि सिखलाने वाला कर्म।

२– मसि: लिपि एवं अक्षर बोध कराने वाले कर्म।

३– कृषि: खेती और बागवानी।

४– विद्या: नृत्य एवं गायन आदि कला सिखाने वाला कर्म।

५– वाणिज्य: आवश्यकता से अधिक वस्तु का विक्रय और आवश्यकता की वस्तुओं का क्रय करना।

६– शिल्प: भवन और वस्त्र आदि का निर्माण और इस प्रकार बसाये गये, गांव, पुर, पतन, नगर।

और जैन धर्म का दावा है कि भगवान ऋषभ देव ने बतलाया था कि कर्मो के आधार पर ही मनुष्य चार प्रकार के विभाग से आता है, जिसे हम जाति व्यवस्था कहते हैं, जो इस प्रकार है—

—ब्राह्मण
—क्षत्रिय
– वैश्य
—शुद्र

इसके अलावा भगवान ऋषभ देव ने राज पद्धति के नियम बनाये अतः वे प्रजापति भी कहलाये।

भगवान ऋषभ देव को ही इस बात का श्रेय है कि

उन्होंने लिपि और अंक विद्या का आविष्कार अपनी दोनों पुत्रियों को क्रमशः अंक विद्या और लिपि सिखलाने के लिये किया था।

इस विषय में एक कथा प्रचलित है कि उनकी दोनों पुत्रियां ब्राह्मी और सुन्दरी क्रमशः बांई और दाई जांघ पर बैठी थी। उन्होंने क्योंकि ब्रह्मी को बाएं से दायें को ओर लिखना सिखाया था अतः वह इसी प्रकार हिन्दी की लिपि बन गई। हिन्दी इसी प्रकार लिखी जाती है। और दूसरी कन्या जिसका नाम सुन्दरी था उसे उन्होंने दाई ओर से बाईं ओर अंक लिखने सिखलाये। इस प्रकार इन्होंने आधुनिक परिवेश के लिये सतत कार्य किया और नये समाज की नींव डाली। लेकिन अभी तो इससे बड़ा कार्य शेष था।

कर्म का समुचित विधान करने के बाद भगवान ऋषभ देव ने गृहस्थ जीवन त्याग कर मुनि जीवन स्वीकार और घोर वनों में तपस्या करने चले गये। उनके साथ उनके चार हजार व्यक्ति भी गृहस्थ आश्रम छोड़कर साधु बन गये मगर अभी धर्म का वास्तविक परिवेश निश्चित नहीं हुआ था और लोगों को तपस्या आदि का अनुभव नहीं था, अतः साधू धर्म उनसे नहीं निभा। वे गृहस्थ भी नहीं बन सकते। अतः वे जंगल में ही रहकर वल्कल पहनने लगे और कंद मूल फल फूल खाकर जीवन यापन करने लगे। और इनमें से कुछों ने अपने मनमाने सिद्धान्त बनाकर कई मत और धर्मों का निर्माण भी किया।

क्योंकि जनता में विवेक का अभाव था अतः जब भगवान ऋषभ देव छः माह के उपवास के बाद उपहार के लिये निकले तो लोग जो उपहार लेकर आये थे वह श्रद्धा पूर्ण होते हुए भी अखाद्य होते थे। उन्हें मुनि वर खा नहीं सकते थे। अतः

स्वीकार किये बिना ही मुनि देव आगे बढ़ जाते थे और
निरन्तर छः माह तक यही स्थिति रही। भगवान का विहार
जारी रहा और अन्ततः वे हस्तिनापुर पहुंच गये जहां राजा
सोमवश का छोटा भाई यान्स को भगवान का सत्यकार के
लिये विहार करते देख पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। उसी
के अनुसार वह भगवान को सही आहार प्रस्तुत करके उस
अपार पुण्य का भागीदार बना जिसकी धवल कीर्ति आज भी
जगमगा रही है। श्रेयसि दान तीर्थ का प्रवर्तक कहलाया
और वह तिथि अक्षय तृतीया के नाम से एक महत्वपूर्ण पर्व
तिथि बन गयी।

आदि तीर्थंकर तपस्या के बाद केवल ज्ञानी बने और
केवल ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने समवशरण में धर्म
उपदेश करना शुरू किया।

भगवान ऋषभ देव ने जिस धर्म की स्थापना की वह था
आर्हत (जैन धर्म) धर्म इस धर्म की बुनियाद में थी अहिंसा।
भगवान ने वास्तविक अहिंसा का प्रचार करके पूरे मानव
समाज को ऐसी दिशा दी कि लिंग पुराण में उनके विषय में
अंकित हुआ: —

अपनी आत्मायें ही आत्मा के द्वारा परमात्मा की स्थापना
करके दिगम्बर वेश में उपहार न करते हुए रहे। ऐसे समय में
उनके केश बढ़ गये थे। और उनके मन में वस्त्र धारण करने
का अंधेरा ही समाप्त हो गया। अतः वे नग्न रहने लगे थे।
आशाओं से युक्त, सन्देह से रहित—उनकी यह तपस्या उनकी
मोक्ष लक्षय के लिये सहायक सिद्ध हुई थी।

भगवान ऋषभ देव की अक्षय कीर्ति हैं आज का जीवन,
आज का विवेक और आज का जनजीवन।

ऋगवेद में भी भगवान ऋषभ देव की उपासना करते हुये
कहा गया है :

-सम्पूर्ण पापी से युक्त
अहिंसक व्रतियों में प्रथम
प्रजापति
आदित्य स्वरूप श्री ऋषभ देव
का मैं आह्वान करता हूं
वे मुझे वृद्धि एवं इन्द्रिय सहित बल प्रदान करेंगे ।

अथवा

मिष्टपाणी
ज्ञानी,
स्तुति योग्य
ऋषभ देव को पूजा साधक मंत्री द्वारा वर्धित करो। वे भक्त को कभी नहीं छोड़ते।

अथवा

है शुद्ध दीपित भाव
सर्वदा वृषभ
हमारे ऊपर ऐसी कृपा करें
कि हम कभी नष्ट न हो सके ।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद से उद्दृत कुछ मंत्री की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

जो संसार का मित्र है—
ध्यान द्वारा साधा है
जो पुरातन है
स्वयभू है
जिनकी सभी स्तुति करते हैं :

इस द्रव्य दाता अग्निको हमने अपना आराध्य देव स्वीकार कर लिया है।

दूसरा मंत्र है :

जिनकी प्राचीन निविदायें स्तुति करते हैं जिसमें मनुओं की सन्तानीय प्रजा की व्यवस्था की है जो अपने ज्ञान के द्वारा मनु और पृथ्वी में व्याप्त किये हुये हैं देवो ने उसी द्रव्य दाता अग्नि को धारण कर लिया है उन्हीं की स्तुति करो।

जो सर्व प्रथम भी उनके साधन है।

सर्व पूज्य हैं।

असरण शरण हैं।

और अग्र नेता है।

क्योंकि भगवान ऋषभ देव आदि तीर्थ कर थे अतः उनको निम्न पदों से भी विभूपित किया गया है।

१. जातवेदस—जन्म का नाम जानने वाले

२. विश्ववेदस—विश्ववाता

३. मोक्षवेता ४. कृतिमज (धर्म संस्थापक)

५. धर्म ६. कर्ग

७. शुक्र ८. ज्योति

९. सूर्य १०. रूद्र

११. रवि १२. पशुपति

१३. वुग्र १४. अशनि

१५. भव १६. महादेव

१७. इशाव १८. आघ

१९. विष्णु २०. इन्द्र

२१. मित्र २२. वरूण

२३. सुपर्ण २४. दिव्य

२५. छः गरूत्भाव २६. यम

२७. मातिरिक २८. अग्नि

२९. प्रजास्वामी

पूरे मानव समुदाय को क्यों कि भगवान ऋषभ देव ने एक मया-परिवेश और नया जीवन प्रदान किया था, अतः स्वभाविक था कि विश्व की अन्य पुरातन भाषाओं में भी उनका उल्लेख बिगड़े हुए रूप में देखने को मिले, वहां मिलता है। उसकी एक झांकी प्रस्तुत है—

अरवी के आदम और इस्लाम के अल्ला

आदम का अरवी अर्थ है प्रथम। भगवान ऋषभ देव ने क्यों कि धर्म और कर्म से भरपूर जीवन की पहल की थी अतः उन्हें धर्म कर्म के संस्थापक के रूप में पूजते वक्त आदम की संज्ञा दी गई थी।

भगवान् ऋषभ देव जगत पूज्य थे। उन्हों के लिए भक्ति भाव से आलोकित दो शब्दों का उपयोग किया गया था। एक इला और दूसरा इड्स। आपको याद तो होगा कि पणि वह भारतीय व्यापारी था। जिसने सुदुर पश्चिमी एशिया में न केवल अपना व्यापार बढ़ाया था। अपितु अपने व्यवहार से पूरे पश्चिमी एशिया को प्रभावित किया था उसके प्रभाव में आकर इस्लाम में आया अल्लाह जो वास्तव में इला अथवा अल इल्ला का ही रूप है।

खुदा भी स्वयं का एक रूप है

भगवान ऋषभ देव की दीक्षा देने वाला कोई नहीं था। वे अपने गुरु स्वयं थे और स्वयं ही उन्होंने मोक्ष मार्ग का यशस्वी पथ ढूंढ़ा था। अपने देश में वे स्वयं कहलाये तो फारस के आसपास उन्हें खुदा की संज्ञा दी गई और उनका अत्यंत सम्मान किया गया था।

पारसियों के अहुरमज्द

जी हां, पारसी लोग भी जिस अपार श्रद्धा से भगवान ऋषभ देव की पूजा करते हैं उनमें उनका भाव है परम दयालु

का रूप। अहुरमज्द अर्थात् असुर महत। अर्थात् महान दयालु।

मिश्र में ओसरिस

ओसरिस का सीधा सादा असरूरेका।

गॉड़, के रूप में भगवान वृषभ देव

गौड, शुद्ध अंग्रेजी का मेहमान शुद्ध है जो वास्तव में कभी गॉड था। अर्थात् वृषभ देव। वही जगत पूज्य देवता जो वहाँ आकर गॉड हो गया था।

हम सभी यह मानते हैं कि सभी धर्मों का, जो आज विश्व में पल रहे हैं। उसका एक ही स्रोत है और उसका उदगम भारत में ही हुआ था।

अगर ऋषभ देव के अनुयायी यह दावा करे कि उसका मूल भगवान ऋषभ देव और उनकी प्रचारित वह अहिंसा है जो आज भी अपनी उदार वृति से मानव समाज को नहीं प्राणीमात्र को सही राह पर लगाती है तो वह कोई अतियुयोति नहीं है। क्योंकि भगवान ऋषभ देव एक प्रकार से अहिंसा की भय मात्रा के प्रथम संवाहक थे जिन्होंने पूरे मानव समाज के एक दूसरे परिवंश में लाश खड़ा कर दिया था। और सर्व प्रथम कर्म द्वारा परा स्वी मार्ग ग्रहण करने का आह्वान किया था। भगवान ऋषभदेव यह गौरव भी प्राप्त है कि उन्होंने धर्म की वह यात्रा शुरू की जो आज तक प्राणी मात्र को जीने और जीने के वाद आत्म युक्ति की राह दिखला रहा है।

अहिंसा को गौरव प्रदान कराने में जिस महारथी ने सबसे अधिक प्रयत्न किया और सार्थक प्रयत्न किया उनमें भगवान नेमिनाथ का नाम अग्रगणय था।

भगवान नेमिनाथ।

कातर पशुओं के मूक रुदन से प्रभावित हो जाने वाले

यशस्वी राजकुमार की कथा कम मार्मिक नहीं है।

इनके विषय में इस प्रकार का भाव व्यक्त किया गया है।

काल बीत रहा है।

काल चक्र घूमता है।

काल जो भोग भूमि के जीव थे, वे चिरंतर प्रभात के बाद सुसंस्कृत नागरिक बन गये है।

भारत में कई जनपद स्थापित हुये और आ पहुंचा भगवान कृष्ण की गीता के युग के साथ भगवान नेमिनाथ का युग।

महाभारत कालीन भारत।

हमारे भारत की बिगड़ी राज्य व्यवस्था। और इस बिगड़ी राज्य व्यवस्था के कारण धर्म लुप्त हो गया था। मथुरा के राजावंस ने अपनी ही बहन से अपने बहनोई समेत कैद खाने में डाल दिया था। उस वक्त की व्यवस्था ऐसी थी कि देश से कृष्णा और नेमिनाथ दोनों की आवश्यकता थी। और दोनों ही सौभाग्य से अवतरित हो गये थे। भगवान कृष्ण के साथ भगवान नेमिनाथ का नाम हटाया नहीं जा सकता। बल्कि वे एक दूसरे के पूरक बने थे। भगवान नेमिनाथ जैन धर्म प्रवर्त्तर ही नहीं तीर्थ के थे, जिनके विषय में प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार श्री बलभद्र जैन ने लिखा था।

भगवान नेमिनाथ बाइसवें तीर्थ थे जो यदुकुल में उत्पन्न हुये थे। उनका वंश हरिवंश था जो युदुकुल का मूलवंश था। यदुवंश के सम्बन्ध में जैनपुराणों में विस्तृत और सुसम्बद्ध विवरण उपलब्ध होते हैं। चम्पापुरी (अंग दशा) का राजा आर्य था जो मूलतः विजयार्व पर्वत की उत्तर दिशा में हरिपुर नामक नगर का स्वामी था। किन्तु कारण वंश चम्पापुरी आ गया था। उसने आकर अनेक राजाओं को जीत कर अपना राज्य काफी विस्तृत कर दिया था। उसका पुत्र हरि हुआ जो

बड़ा प्रतापी और तेजस्वी था। उसके नाम पर ही हरिवंश की स्थापना हुई।

आगे चल कर इसी हरिवंश में दक्ष नामक एक निम्न प्राकृतिक का नरेश हुआ। अपनी पुत्री के साथ ही उसके अनुचित सम्बन्ध देखकर उसकी पत्नी इला और पुत्र ऐ लय अंगराज होकर चले गये और दुर्ग देश में आकर इलावर्धन नगर बसाया। ऐलेय ने अंग देश में ताम्र लिप्ति और नमर दातर पर अहृष्मति नामक नगरों की स्थापना की जो इतिहास में भी प्रसिद्ध हुये थे।

इसी वंश में आगे चल कर एक राजा हुआ जिसका नाम था नरेश अभिचन्द्र। इसने विन्ध्याचल के पृष्ठ भाग पर चेदि राष्ट्र की स्थापना की। इनके शत्रु थे वसु जो सत्यवादिता में तो अत्यन्त खरे थे मगर हिंसा का समर्थन करके उनकी अपार अपकृति हुई थी। वसु के दन पुत्र हुये थे। जिनमें सुवसु नागपुर आ बसे और व्रह्मवज मथुरा में आ गये थे। सुवसु के वंश में जरा-सिन्ध आगे व्रह्मवज के वंश में मधु नामक यशस्वी और प्रतापी नरेश हुये जिनके नाम पर यदुवंश की नींव डाली गई। यदु के सुपुत्र और पौत्र थे शूर और सुवीर (शूर के यहां वृणि और सुवीर के यहां भोजक वृष्णि जनमे। अन्धक वृणिज से समुद्र विजय और वासुदेव आदि दस पुत्र हुये। समुद्र विजय शोरीपुर के शासक बने। कौवक वृष्टि के उग्रसेन आदि तीन पुत्र हुये।

कहते हैं कि समुद्र विजय की रानी शिवानी से भगवान ने मित्ना का अवतरण हुआ।

कृष्ण वासुदेव के पुत्र थे और उस समय देश भर में हिंसा की तूती बोल रही थी। अहिंसा की जययात्रा में विलम्ब था, मगर उसे पुनः अपने पद पर प्रतिष्ठित करने वाला महान

जीव पैदा हो चुका था और गिरनार पवत उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गौरव इस धरती इस महान आत्मा का आगमन निश्चित सा था और अहिंसा को हिंसा पर विजय प्राप्त करनी थी।

देश में हिंसा का प्रचार इतना बढ़ गया था कि मुक पशुओं का वध केवल जीभ के स्वाद के लिये किया जाता था। कोई उत्सव हो या समारोह। धार्मिक अनुष्ठान हो या कोई पर्व, सभी पर हिंसा हावी रहती थी। मुक पशुओं का रक्त बहता ही रहता था। वास्तव में यह हिंसा उस बीमारी की ओर संकेत था जो अधिक विकास के बाद आती ही है। छोटे, बड़े, कमजोर और शक्तिशाली शासकों की इच्छाओं पर बने राज्य में केवल शक्ति संतुलन का ही वोल वाला था। क्रूर राजा धरती पर भार थे और उनके अत्याचार आम जनता को परेशान किये हुये थे। तभी राजाओं की एक साधारण सी इच्छा की साधारण पूर्ति के लिये आम नागरिक और साधारण जीव को मृत्यु के द्वार पर धकेल दिये जाते थे। पर दूर दूर तक मार करने वाले भयंकर अस्त्र शस्त्र आविष्कार हो उठे थे और सभी राजा अपनी स्वार्थ लिप्सा के लिये खुले आम हिंसा को बढ़ावा दे रहे थे। धर्म पुरोहित भी इसमें हां में हां मिला रहे थे।

हिंसा की शुरूआत के विषय में बतलाया गया था कि शक्तिहीन व्यक्तियों का आकर्षण ही हिंसा को बलवान बनाता है। निरपराध व्यक्तियों को मौत के पार उतारने की परम्परा को बनाने के लिये ही पशु भोग को लोकप्रिय बनाया गया। और पांचों कषाओं को जान बूझ कर आम जीवन में लाया गया। ताकि लोगों की नजर में जीवन का मूल्य निरंतर कम हो जाये।

शासकों के स्वार्थ लिप्सा के कारण उनके एजेंट धर्म पुरी हितों ने पौरुष की गलत और नई परिभाषा अंकित कर दी थी। ऐसा कहा जाने लगा था कि जो मांस नहीं खा सकता, शिकार और आखेट नहीं कर सकता वह पुरुष ही नहीं है। यह सिर्फ इसीलिये किया जाता था। कि सैनिक वर्ग इतना कठोर हो जाये कि निर्मय और जालिम; प्रवृति इस प्रकार उनके स्वभाव का अंग हो जाये कि वे भयंकर से भयंकर रक्त पात से भी न घबराइये।

हिंसा के जन प्रयजनों का आम तौर से उल्लेख किया जाता है उनकी वृद्धि जब स्वार्थ वश और योजनाबद्ध होती है तो ऐसा लगता है कि स्वार्थ लिपसा के अन्धकार में कुछ सुझाई ही नहीं देता। और अंधकार के पर्त और गहरी और जटिल होती जाती है। उस वक्त किसी ऐसे महापुरुष की आवश्यकता पड़ती है जो अपने अन्तर के प्रकाश से मार्ग प्रशस्त हो सके। उस वक्त हिंसा एक आवश्यकता बन गयी थी। क्योंकि वेदों के कहे गये वाक्यों का उल्टा सीधा अर्थ अपनी मरजी से अपने स्वार्थ के लिये निकाल लिया गया था। उनके अनुसार हिंसा धर्म थी।

क्यों ?

उत्तर मिलता: वेदों ने यही कहा है—संस्कृत के कठोर श्लोकों का यही रुप जन भाषा में अनुवाद अपनी मरजी से दिया जा सकता था और फिर उस वक्त तो राज सता भी पुरोहित आधीन हो गये थे।

अंध विश्वास—बलि को बल दे रहा था। लोग सोचते थे हर महत्व के कार्य में एक मूक पशुओं का वध होना आवश्यक है। खास तौर से इन कार्यों में:—

१ : पितर सन्तुष्ठि।

२ : अतिथ्य ।

३ : तन्त्र विद्या ।

आम जनता में दया का प्राकृतिक मान समाप्त करने के लिये और पशु हत्या को सावमौम बनाने के लिये अहिंसा और अहिंसा पारित दया भाव को कायरता की संज्ञा दी जाने लगी थी। और पुरुष को अपना पौरूष बतलाने के लिये जरुरी था कि वह पशुवध करे, मांस का सेवन करें।

अब भी स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। हमारे समाज और खास तौर से भारत में हिंसा फैशन समझा जाता है और हिंसा से प्राप्त मांस का सेवन इसलिये किया जाता है क्योंकि आज कल वह आधुनिक लोगों का फैशन है। अब जो फैशन प्रतीक है। वह उन दिनों प्रतीक था पौरुष का।

भगवान नेमिनाथ बाल्यकाल से ही अहिंसा का व्रत ले बैठे थे। अहिंसा के लिये उन्होने ने सभी प्रयोजन जान लिये थे जिसके कारण हिंसा होती है।

यह प्रयोजन इस प्रकार है:—

निम्न वस्तुओं के लिए प्राणियों की हिंसा होती हैं—

चर्म, वसा, मास, मेंद, रूधिर, यकृत, फफुस, मस्तक..., हृदय, आतें, फोफस, दंत, अस्थि, मज्जा, नख, नेत्र, कान, स्नायू नाक, धमकी, सांग धढ़, पूछे, तिप और बाल।

आत्म सुख के लिये की जाने वाली हिंसा।

मधु मक्खी को शहद के लिये, जुये, खटमल, मच्छर, मक्खी रेशम के कीड़े, रेशम की चिड़िया, सीप, शंख, मूगा।

निर्माण हिंसा:

कृपि, बावड़ी, कुये, सरोवर, तड़ाग, अटारी, चिति, चैत्य, खाई आदम, बिहार, स्तूप, गढ़। द्वार, गोपुर, किवाड़, अटारी

चारिका, सेतू, प्रासाद, चेतु:शाला, भवन, झोपड़ा, गुफा निर्माण के लिये अथवा शिखर वंद देनेवाला, मंडप, झाड़, तापासाश्रम, भूमि ग्रह में निर्माण हिंसा होती हैं और मिट्टी सुवर्ण धातु नमक आदि प्राप्त करने के लिये पृथ्वी दायिक हिंसा होती है और पचन पाचन, जलाने, प्रकाश और शक्ति में अग्नि कामिक हिंसा सम्पन्न होता है अहि आचमन, शौच धापन, धौमन पान और स्नान से जलकायिक हिंसा होती है। इसके अलावा हिंसा के ये आधार हैं:

व्यंजन, सूर्पयक, तालवृन्त, पंख, पत्र, हथेली, परस्न, पातू और हत्या के आधार है।

व्यजन, सूर्पक, तार्लदन्त, पंख पव, हथेली, वस्त्र, धातू और स्थावर हत्या के आधार है:—

घर के उपकरण, पलंग। खपरेल, शास्त्र, जैसे तलवार, बन्दुक लाठी, भाले, शूली, 'रहट, परिधा द्वार, चारिका, अहात्मक, परिचाक, मोदकादि अक्षर, चावल आदि भोजन, वयनासन, कुर्सी, पलंग आदि मूसल ओखली, वीणादि तंत, नगाड़े ढोलक, मृदंगे, तांगा, मोटर आदि वाहन, मन्द्रह, विविध प्रकार के भवन, तोरण, देवकुल, जाली, मरे जीने, निर्मूह चन्द्रशला, वेदिका, त्रिश्रेणी, द्रौषी, मंगोरी, शंख, छोलदारी पात्र, प्याऊ, सुगंधित चूर्ण माला, त्रिलोचन, वस्त मूय, हल रथ, युद्धकी गाड़ियां, में व्याप्त हिंसा।

भगवान नेमिनाथ ने अहिंसा के उस महान् सिद्धांत को सामने रखा कि एक नया आदमी उपस्थित हो गया। हम कह आये कि भगवान नेमिनाथ बचपन से ही अहिंसा के प्रति आकृष्ट थे।

इसका अर्थ यह नही है कि वे कायर थे अथवा अपने समकालीन किसी वीर से हल्के थे। उनके जीवन की एक

घटना ने यह सिद्ध कर दिया था कि वे किसी भी महान व्यक्ति से कम वीर नहीं थे, देवर भौजाई की नौक झौक तो चलती भी रहती है। भारतीय परम्परा में तो भाभी देवर को उकसाती ही आई है। उक्त समय भगवान ने भिनाल शारंग पर प्रत्येक को चढ़ा कर और पांचजन्य शंख बजाकर अपना गौरव मय व्यक्तित्व उच्च कर दिया था।

तब धनुष टंकार उठा। शंख का तमुल घोप चारो दिशाओं में गूंज उठा।

और यह सिद्ध हो गया कि अहिंसक व्यक्ति ज्यादा बड़ा वीर हो सकता है। उनकी वीरता की धाक जमती ही गई।

और फिर तय हुआ कि उनकी शादी हो।

उग्रवंश की कुमारी राजुलमती से उनका सम्बन्ध हो गया

और फिर आ गया विवाह समारोह।

नेमिनाथ की वर यात्रा प्रारम्भ हुई।

नेमिनाथ के सिर पर मुकुट शोभा दे रहा था। कंगना बंधा था और बारात में सभी महत्वपूर्ण व्यक्ति विद्यमान थे।

धूम धड़ाके के साथ, बारात ने नगर प्रवेश किया था।

बारात नगर की परिक्रमा कर रही थी।

अचानक नेमिनाथ का मन विह्वल हो गया। कहीं से क्रन्दन की आवाज आ रही थी।

उन्होंने रथवान को रोक कर कहा—भद्र ?

—'आर्य वर।'

—'यह आवाज—।'

—'कोई विशेष नहीं।'

—'मगर अविशेष क्या है ?'

—'यह पशुओं की आवाज है।'

—'मगर यह तो चीख पुकार है ?'

—'हां।'
—तो क्यों ?
—'बारात का आतिथ्य जो करना है।'
—'बारात का अतिथ्य।'
—'हां।'
—'जरा रथ रोको ?'
—'जी।'
—'घुमाओ। रथ घुमाओ न।'

भगवान नेमिनाथ ने देखा एक बहुत बड़ा बाड़ा है। उस बाड़े में मूक पशु क्रन्दन कर रहे थे और भगवान नेमिनाथ के कानों में रथवान का स्वर गूंज रहा था—आर्य, आप के विवाह में अनेक मांशाहारी व्यक्ति भी आये है। उनके मांस की व्यवस्था के लिये ही ये पशु यहां बन्द किये हैं। इन्हें मार कर बरातियों का सत्कार किया जायेगा।'

आतिथ्य सत्कार।

और उसके लिये हत्या।

नेमिनाथ सुनते ही गंभीर विचार में पड़ गये। सोचने लगे क्या मेरे लिये ही इतने पशुओं के प्राणी विघात होगा। मेरी प्रसन्ता का मूल्य क्या इतना अधिक है कि ये विचारे पशु मृत्यु के कारागार में चले जाये। ये सब मारे जायेंगे। नहीं ये जीवित रहेगे। मुझे नहीं चाहिये नहीं प्रसन्नता का इतना बड़ा मूल्य।

मैं इनके जावन का मूल्य दूंगा।

अपनी प्रसन्नता को सदा के लिये शादी नहीं चाहिये ,होम कर दूंगा।

संसार सुख तो क्षणिक होता है। नहीं चाहिये मुझे विवाहर सुख। और कैसी विड़म्बना है। यह सुख है। क्या और उन्होंने रथवान से कहा—भद्र।

—'जी।'

'रथ रोक लो।'

'हमें देर हो रही है आर्यवर।'

'क्यों।'

'विवाह मण्डप में हमारी राह देखी जा रही होगी।'

'राह वह मंडप नहीं देख रहा है वे मूक पशु—।' इसके साथ ही नेमिनाथ ने अपना मुकुट, कंगण और अन्य आभूषण उतार फेंके। रथ छोड़ दिया उन्होंने और सीधे बाड़े में पहुंचा पशुओं को स्वतंत्र कर दिया। और उन्हे उनके स्थान वन की ओर हांक दिया। मगर इस घटना से एक प्रकार से उनके जीवन में उत्थान का नया आधार आ गया। उन्हें संसार से वैराग्य हो गया। और अहिंसा के लिये उन्होने अपना उत्सर्ग कर डाला।

रथ मुड़ गया।

मंडप सूना रह गया।

कुछ दूर जाकर भगवान नेमिनाथ रथ से उतर पड़े। अब उन्हें रथ से क्या लेना देना।

वे चल पड़े, वे घन घोर जंगलों में।

और उधर।

बारात विस्मय से हैरान रह गई।

समाचार अन्तपुर में पहुंचा। मेंहदी लगवाती राजुलमती ने सिर उठाया। पूरा नगर सजा था। मेहमान आये हुये थे। विवाह मंडप में पवित्र वेदी सजी थी।

राजकुमारी से उसके माता पिता ने कहा, बेटी।

जी।

शोक न करो। लग्न वेला टली नहीं। हम किसी और राजकुमार के संग तेरा विवाह कर देंगे।

'पिताजी।'

'हां।'

'स्त्री के जीवन में पति तो एक ही होता है। न जाने मेरे किस जन्म का पाप कर्म सामने आया कि मेरे पति ने मुझे त्याग दिया है। अब मैं दूसरा पाप नहीं करना चाहती। वे ही मेरे पति है और उनके चरण में ही मेरा स्थान है। मेरा मार्ग भी वही हैं जो उनका है। जिस राह से वे गये हैं उसी रास्ते से जाना होगा।

यह कहकर राजल मती ने अपना श्रृंगार त्याग दिया घर त्याग दिया और गिरनार पर्वत की ओर चल दी।

नेमीनाथ ने गिरनार के गहन वनों में पर्वत शिलाओं पर घोर तप किया केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने पर देश भर में घूम फिरकर अहिंसा धर्म का प्रचार किया।

अलौकिक व्यक्तित्व।,

असाधारण लोक कल्याणकारी उपदेश।

उनके महान उपदेशों से समूचे देश में जहां जहां नगर थे उपनगर थे वहां अहिंसा की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की।

गिरनार के वे शिलाखण्ड पावन होकर तीर्थ बन गये। जहां भगवान नेमिनाथ ने तपस्या की थी। वेदों में भगवान नेमिनाथ को अरिष्ट नेमि के नाम से देवता आभूषित करके उनकी वेदना की गई है।

अहिंसा के इस महान पैगम्बर के लिये यह सम्मान भी कम था, क्योंकि उन्होंने अहिंसा की प्रतिष्ठा करके जिस मार्ग को प्रशस्त किया था, वह भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के अपने जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य बन गया था।

अहिंसा महल से झोपड़ी तक

कोटि, कोटि प्राणियों को अभय वरदान देने वाले।

समवेद शिखर के तीर्थंकर भगवान पार्श्व नाथ

भगवान ऋषभ देव ने संसार को कर्म की ओर अग्रसर किया था और उन्हें कृषि, मसि आदि की शिक्षा दी थी, भगवान नेमिनाथ ने हिंसा के भयंकर दांत तोड़कर अहिंसा की प्रतिष्ठा की थी। मगर अहिंसा की उस प्रतिष्पति को और उस अहिंसा ज्योति को जन साधारण में पहुंचाने का कार्य भगवान पार्श्वनाथ ने किया था।

भगवान पार्श्वनाथ तेईस वे तीर्थंकर थे और वास्तविक इतिहास के पर्व थे। एक प्रकार से उत्पीड़ित जनजीवन में अहिंसा को स्थिर करने में वे पहले जन नेता था और उन्होंने अपने जीवन में ही ऐसे कार्य सम्पन्न कर लिये थे उनकी यश की तीव्र धवल पताका दूर दूर तक फैल गई थी।

आपने देवाधिदेव भगवान पार्श्वनाथ के विषय में मेरी लिखी पुस्तक पढ़ ली होगी। लेकिन जिन को वह पुस्तक उपलब्ध नहीं हो पाई है उसकी जानकारी के लिये निवेदन है कि भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ई० पू० ८७२ में बनारस में हुआ था। उनके पिता राजा विश्वसेन थे और मां बनने का गौरव नामा देवी को मिला था। वे कश्यप गौत्रीय इच्छा कुल के उग्रवंश के क्षत्रिय थे। जैन धर्म और अहिंसा उन्हें वंश परम्परा से मिली थी। आपको याद होगा कि उनका एक जन्म मरुभूमि के रूप में हुआ था। और उस वक्त भी वे अपार क्षमा, दया के अपार स्वामी थे और इस प्रकार उन्होंने आठ भावो में अपने संयम को बनाये रखा था। आठ भवों में उनका त्रास देने वाला जीव था कमठ का जीव।

यह संघर्ष मरु भूति और कमठ के रूप में शुरू हुआ था वह जिस प्रकार भवो में निम्न था:—

१- कमठ २- कुकुह सर्प

३- अजगर ४- भील
५- सिंहम ६- महीपाल

उनके इन कर्मों पर प्रकाश डालते हुए एक ग्रन्थ कार ने लिखा है :

अहिंसा की साधना उन्होंने कई जन्म पूर्व से की थी उन्होंने अहिंसा की वह मूल्यवान था तो मरुभूति के जन्म से हिली पाली थी, उस समय से उनकी महान क्षमा, भूत दया वैरी के प्रति आक्रोश की भावना की परीक्षा निश्लेश आठ भवो तक कमठ के जीव अपने विभिन्न रूप में लेता रहा और सदा ही वे इस परीक्षा में सफल रहे। सदा ही कमठ ने कमठ के रूप में कुकुह सर्प, अजगर, भील और सिंह होकर उन्हें कष्ट दिया, किन्तु वे अपनी अहिंसक निष्ठा से विचलित नहीं हुए। उन्होंने सदैव ही शत्रु के इष्याहव से घृणा की किन्तु अपने शत्रु से सदा प्रेम, मैत्री के भाव ही रखे। किन्तु उनका शत्रु कमठ का जीव विभिन्न पौनियों की तरह इस बार भी संयोगवश उनके नाना महीपाल के रूप में उत्पन्न हुआ और वह एक हटी तपस्वी बन गया।

एक दिन बनारस के बाहर वह एक पैर पर खड़ा रहकर पंचाग्नी तप कर रहा था। तब भगवान पार्श्वनाथ सोलह वर्ष के सुन्दर राजकुमार थे। अपने साथिओं के साथ नगर भ्रमण के लिये निकले थे अनायास उस स्थान पर आ गये थे जहां पंचाग्नि तप हो रहा था।

—तप
अग्नि जलाये।
लकड़ी जलाना।
और अपने आप को त्रास देना।

अनजाने तप करना, यात्रा का प्रदर्शन करना, भावना में

प्रदर्शन होना, और तप को अपनी महत्ता का स्तर समझना वास्तव में साधू वृति नहीं होती। साधू कैसे होते हैं, तप स्वकार कैसा स्वरूप होता है यह तो निम्न भावना से ही प्रकट होता है :

पराधीन मुनिवर की भिक्षा पर घर लेय रहे कुछ नाहीं।
प्रकृति विरुद्ध पारण भुजत बढ़त, प्यास की त्रास तहां ही॥
ग्रीषम काल पित्त अति कोपे, लोचन दो फिरे जबजट ही।
नीरत चहे, उहै तिसने मुनि, जयवंते वर्त जगमाही॥

मुनियों का आहार तो पराधीन होता है। वे दूसरे के घर आहार लेते हैं अपने मुख से आहार के सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं कहते। उद्दीष्ट आहार के सर्वता त्यागी होते हैं। ऐसी दशा में गर्मी की ऋतु में कोई श्रावक उनके प्रकृति विरुद्ध आहार दे देता है, तो प्यास बड़े जोर शोर से लगती है, पित की अधिकता से व्याकुलता बढ़ती है, यहां तक कि गर्मी और प्यास के कारण दोनों आंखें फिर जाती है। ऐसी दशा में भी जल की याचना नहीं करते। न जल ग्रहण ही करते हैं। सम तप भाव से प्यास की बाधा को सहन करते हैं। और

शीत काल सब ही जन कंपे खड़ जहां वृक्ष देह है।
झंझा वायू बहे वर्षा ऋतु, पर्वत बादल झूम रहे हैं॥
तहां धीर तटनी तर चोपल, ताल पाल पर कर्म दहे हैं।
स्नेह संभखल शीत की बाधा, ते मुनि तारन तरन कहे है॥

और

भूख प्यास पीछे उर अंतर। प्रज्वल आंत देह सब दागे।
अग्नि स्वरूप धूप ग्रपम की ताती, बाल झालसी लागे॥
तपे पहार ताप तन उपजत कोपे पित देह ज्वर जागे।
इत्यादिक ग्रीपम की बाधा, सहत साधू धीरज नहीं त्यागे।

मगर महीपाल में यह गुण नहीं था। वह तो केवल प्रदर्श-

कारी था। ठीक उस जादूगर या वाजीगर की भांति वह निम्न वाइस परिग्रह वह की विजय नहीं कर पाया था:—

१– भूख
२– प्यास
३– शीत
४– गरमी
५– दर्शनात्मक
६– नागन्य
७– अरति
८– स्त्री
९– चर्या
१०– निपधा
११– रोया
१२– आक्रोस
१३– वध
१४– याचना
१५– अलाभ
१६– रोग
१७– तृण स्पर्श
१८– मल
१९– सत्कार पुरस्कार
२०– प्रजा
२१– अज्ञान
२२– अदर्शन

और नहीं उसमें ये गुण आ पाये हैं:—

अनशन ऊनोदर तप पोपक पाखमास दिन बीत गये।
जो नहीं पीने योग्य भिक्षा निधि, सूख अंग सब शिथिल भये है।
तब बहुदुस्सह भूख की वेदन, सहत साधू नहीं नेक नये है।
तिनके चरण कमल प्रतिदिन दिन हाथ जोड़ हम शीश नवे है।

तथा

अन्तर विषम वासना वर्ते बाहर लोक लाज भयभारी।
ताते परम दिगम्बर मुद्रा, धर नहि सके दीन संसारी॥
ऐसी दूद्दर नगन पापिह, जीते साधु शीत व्रतधारी।
निर्विकार बालक वत निर्भय, तिनके पायन धीक हमारी॥

और

हांस मांस माखी तनकारे, पीडे वन पक्षी बहुतरे।
डसे व्याल विपभारे बीहू लगे खजूरे आन अनेरे॥
सिंह स्याल सुंडाल सतावे, रीछ रीभ दुख देय बडेरे।
ऐसे कष्ट सहे समभावन, ते मुनिराज हरो अध मेरे॥

महीपाल को पचाग्नि तथा तपता। तेखि किशोर पाश्व-कुमार ने अचरज से कहा—'वाह।'

'हूं।'

'तपस्वी महोदय।'

'क्या है।'

कुमार पार्श्वकुमार तो जन्म योगी और अवधि ज्ञान के वकता थे। उन्होंने अपनी ज्ञान चक्षुओं से देखा कि यह तपस्वी अपने अज्ञानवेश अनेक जीवों का घात कर रहा है। ये निरंतर जलने वाली लकड़ियों न जाने कितने जीवों की वलि ले चुकी हैं और तभी तपस्वी ने एक मोटा लक्कड़ अग्नि में झोंक दिया। पार्श्व कुमार का हृदय द्रयाद्र हो उठा, आंसुओं से भरे मन से उन्होंने कहा—'तपस्वी, इस लक्कड़ को निकाल दो आगे से।'

—'क्यों।'

—'यह हिंसा है।'

—'हिंसा।'

—'हां।'

—'सो कैसे ?'

—तपस्वी, होकर भी तुम्हें विवेक नहीं, कितनी हिंसा कर रहे हो तुम।'

—सभ्यता से वात करो कुमार। धृष्टता से वात मत करो। मैं आयु पद, ज्ञान, अनुभव और तव सब में तुमसे वड़ा है। और मुझे ही उपदेश देते हो। कह रहे हो हिंसा करता हूं। अरे, तप के प्रति तुम्हारी जरा भी निष्ठा नहीं है। गुरू-जनों, वृद्धजनों से कैसे वात की जाती है। यह भी सिखलाना पड़ेगा।

पार्श्वकुमार बोले—तुम लक्कड़ न निकाल कर व्यर्थ बातों में समय नष्ट कर रहे हो। तप ने तुम्हें विवेक नहीं दिया, ज्ञान नहीं दिया। दम्भ ही प्राप्त हुआ है। इस लक्कड़ में सांप का जोड़ा जला जा रहा है। विश्वास न हो तो लक्कड़ फाड़ कर देख लो।

'हूं। क्या यह सच है ?'

'यह एकदम सच है।

लक्कड़ फाड़ा गया और उसमें अंध दग्ध सांप का जोड़ा निकल आया। पार्श्व कुमार ने दया पूरित हो, आर्य मुगल को धर्म का प्रतिबोध दिया। बचाये जा सकने का समय बीत चुका था पर उनके मन में इसके भागी जीवन के सुख की कामना जाग उठी थी। फलत: उन्होंने दुख को शान्ति पूर्वक सहने और मारने वाले के प्रतिक्षमा भाव करके जो उपदेश दिया। उसे सर्प सर्पिणी दोनों ने ही मृत्यु की वेदना के बीच शान्त भाव से स्वीकार किया ताकि इससे वे अपना दुख भूल जाये। धर्म की इस ज्योति के कारण वे नाग कुमार देवी के अधिपति धरजेन्द्र और पदमावती के रूप में आये।

भगवान नेमिनाथ ने अहिंसा के लिए विवाह के कंगन को तोड़कर बाड़े में फसे मूक पशुओं का जीवन ही नहीं बचाया था अपितु अहिंसा की प्रतिष्ठा को इतना ऊंचा पद दिया था कि अहिसा ने प्राणीमात्र को अपने सुखों से निहाल कर दिया था। भगवान पार्श्वनाथ ने अपने कुमार जीवन में ही अहिंसा को उच्चतम पद दिया। उन्होंने झूटे तप, हटयोग के प्रति जनता की श्रद्धा को हिला दिया। और कुछ समय बाद कठोर तप करके यह सिद्ध कर दिया कि तप केवल कायाक्लेश नहीं है। वह तो इन्द्रिय और मन की वासनाओं के विरुद्ध विद्रोह है। और उन्होंने तपस्या करने वाले मुनिवर्ग की सीमा

संभावित किया था। जैसे :

देश काल को कारण लहिके, होत अर्च न अनेक प्रकारे,
तब तहां खिन्न होये जगवासी कलमलाम धिरतापद छाड़ ।
ऐसी अरति परिषह उपजत तहां धीर-धीरज उर धारे,
ऐसे साधुन का उर अन्तर, बसे निरन्तर साम हमारे ॥

(२)

जो प्रधान के हरि को पकड़े, पत्रडा पकड़ पांव से चंपत,
जिनकी तनक देख भी बांकी, कोटक शूर दीनता चंपत ।
ऐसे पुरूष, पहाड़ उड़ावन, प्रलय पवन तियवेद पथपंत,
धन्य धन्य वे साधु साहसी, मन सुमेरू जिनके नहि कंपत ॥

(३)

चार हाथ परमाण निरखपथ, चलत दृष्टि इतउत नाहिताने,
कोमल पांत व्यहिन धरती पर, परत की धीर बाधा नहीं माने,
नाग तुरंग यान चढ चलते, ते सवाद उर याद न आते ।
यों मुनिराज भरें चर्या दुख, तब दृढ़ कर्म कुलाचल माने ।

(४)

गुफा मसान शैल तरू कोटर, निवसे जहां शुद्ध भूहरे ।
परिमित काल रहे निश्चल तन, वार वार आसन नहीं फेरे,
मानुस देद अचेतन पशुकत, वैढै तिपति आन जब घेरे ।
ढीर न तजे भजे पिरता पद, ने गुरू बसो सदा उर मेरे ॥

(५)

जे महान सोने के महलन, सुन्दर सेज सौप सुख जोवे ।
से अब अचल अंग एकासन, कोमल कठिन भूमि पर सोवें ॥
पाहन खंड कठोर कांकरी गड़त कीर कायर नहीं होवें ।
ऐसी शयन परीषह जीतत, तेमुनि कर्म कालिमा धोवे ॥

(६)

जगत जीव यावन्त चराचर, सबके हित सुखदानी।
तिन्हें देख पुर्वचन कहें शठ, पाखन्डी ढग यह अभिमानी ॥
मारो याहि पकड़ पापी को, तपसी भेष चो है घनी।
ऐसे वचन की विरियां क्षमा ढाल ओढे मुनिज्ञानी ॥

[७]

निरपराव निर्वैरे महामुनि तिन्हें दुष्ट लोग मिल मारें।
केई खैंच थमं से वांधते, कैई पावक में पर जारे।
तापर रोप न करहि कदाचित, पूर्व कर्म विपाक विचारे।
समरथ होय सहै वध बंधन, तेगुण सदास हाय हमारे ॥

[८]

घोर वीरतप करत तपोधन, मय क्षीण सुखी गल बांही।
अस्थि चरम अवशेष रहयी, तन नसाजाल भलके जिसमांही,
औपधिप्रशन पान इत्यादि प्राण जाये पर मांचत नाहीं।
द्रहर अयायिक धारे, करहि न हलिन धरम परछाहीं ॥

(९)

एक बार भोजन की विरियां, मौन साध बस्ती में आवे।
जो नहीं बने योग भिक्षा विधि, ते महन्त मन खेद न लावे।
ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीते, तब तप विरद भावना आवें ॥
भी अलाभ की परम परिपह, सहे साधू सौही शिव पावे ॥

(१०)

बात पित बूध शोषित चारों, जब घटै बढ़े तन माही।
रोग संजोग सीग तन उपजत, जगत जीव कायर हो जाही,
ऐसी व्याधि वेदना दारूण, सहं शूर उपचार न चाही।
आत्म लीन देहे सो विरकत, जैन यति निजनेम निसही ॥

(११)

सूखे तृण और तीक्ष्ण कांटे, कठिन कांकरी पांग विडारे।
रज उडाये आय पड़े लोच न में, तीर फांस तन पीर विथयो,
तापर पर सहाय नहीं वांछत, अपने करसी काढ न डारे।
यों तृण परस परिवह, विजय, तेगुरू भव श्शरण हमारे॥

(१२)

यावज्जीव जल न्हवन लगे जिननग्न रूप बन थान खरे हैं।
चले पसेवप धूप की विरियाँ, उड़त धूल सब अंग भरे हैं॥
मलिन देह को देख महामुनि, मलिन भाव डर नाहि करे हैं।
यो मल जनित परिषह बिजई, तिन्हे हाथ हम शीश धरे है।

(१३)

जे महान विद्या निधि विजई चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं,
तिनकी विनय वचन सों, अथवा उठ प्रमाण जन नहीं करे हैं
तो मुतिस्वेद नहीं माने, उर भली नताभाव हरे हैं॥
ऐसे परम साधू के अहनिश, वह हाथ जोड़ हम पावं पड़े हैं॥

मगर महीपाल।

क्रोधी साधु—

कमठ का नया रूप, स्वेमव में बालक द्वारा अप पीड़ा होकर रह गया। उसका तप निस्तेज हो गया, मान चूर चूर होकर शत खण्डों में गिर गया था।

अपमान की अग्नि ने उसे जला डाला था।

वह टूट गया—

उसका व्यक्तित्व ऐसा गिर परा कि उसने प्राण त्याग दिये मगर मृत्यु वास्तव में कोई किस्सा समाप्त नहीं कर सकती। मनुष्य जो समझता है कि मरने से कहानी खत्म हो जाती है वह गलत है। क्योंकि मर कर जीव पुन जन्म लेता है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने यही कहा है कि—

जीर्णानि वासंसि यथा विहाय—

एक भव से दूसरे भव का चोला इसी प्रकार पहना या उतारा जाता है जैसे हम फटे पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र पहन लेते हैं। कमठ मरा तो मरकर ज्योतिपक देव बन गया। उस समय उसका नाम था संवर।

भगवान पार्श्वनाथ मुनि हो चुके थे। और विहार करते करते साध्यावर्ती जा पहुंचे थे।

नगर के बाहर वन प्रान्त।

पार्श्वनाथ भगवान लीन हो गये। न काम, न मोह।

तभी संवर वहां से गुजरा।

पूर्व जन्म का प्रतिशोध उभर आया।

एक बात और भी थी। शास्त्रों के मतानुसार जहां भगवान विराजमान थे, वहां उनके तेजोमय व्यक्ति के विस्तीर्ण प्रभात चक्र को याद कर कोई विमान नहीं निकल सकता था, अतः आकाश में ही विमान अटक गया, और संवर देव को यह जानने में ज्यादा देर नहीं लगी कि जन्म जन्म का वैरी यहां पार्श्वनाथ का जीव यहां बैठा है।

प्रतिशोध की ज्वाला दहक उठी।

और देवी माया के भयंकर प्रकोप होने लगे।

ओले पड़े।

भयंकर ओलों के साथ आई वृष्टि।

वर्षा।

आंधी।

और उपद्रव पर उपद्रव।

लेकिन भगवान पार्श्वनाथ जरा भी विचलित न हुये। विचिलित हुये धरमेन्द्र और पदमावती। वे ही सांप युगल जो लकड़ में जल कर प्राण आहुति दे चुके थे। और भगवान के प्रताप से ज़िन्हें सुख और शान्ति मिली थी।

भगवान पार्श्वनाथ का युद्ध चल रहा था और पराजित

हो रहे थे:

—काम

—क्रोध

—मोह

—लोभ।

उन्हें रत्ती परवाह न थी कि संवर क्या कर रहा है क्या करेगा। वे तो सिर्फ यह जानते थे कि वे तपस्या में लीन है और इस वक्त उनका कार्य केवल तपस्या ही करना था।

मगर परोपकार कभी खाली नहीं जाता।

धरेन्द्र और पद्मावती दौड़े आये। भगवान पार्श्वनाथ डूबते जा रहे थे। धरेन्द्र ने उन्हें उपर उठा लिया और सर्प फणकार धन ऊपर तान दिया। सवेरे के सारे प्रयत्न व्यर्थ गये और इस नगरी का नाम पड़ गया अहिच्छत्र।

मगर भगवान पार्श्वनाथ तो इस संसार में भूलो भटके को मार्ग दिखलाने आये थे। वे कोई वेरभाव चुकाने तो आये नहीं थे। इसलिए उनकी दृष्टि समभाव थी। उनकी नजर में संवर और धरेन्द्र दोनों ही समान थे। सत्र कोई मित्र, मगर शत्रु कोई नहीं। चराचर जगत के प्रति उनकी मित्रवत भावना चरम सीमा तक विकसित हो गई, वे सर्वत्र और सर्वदर्शी बन गये थे।

और संवर कभी का कमठ।

इस पराजय से जैसे वह टूट गया था।

कितने बदले लिये उसने।

कितनी बार त्रास दिया।

मगर इस बात की पराजय ने तो उसे तोड़ ही दिया था।

हिंसा हार रही थी।

और आखिर में हमेशा हमेशा के लिये हार गई। आत्म

ग्लानि के आंसू उसके अन्तर का सभी मैल धोने के लिये पर्याप्त थे। वह भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में पड़ा था और क्षमा मांग रहा था और उसके अन्तर से पाप अब बिल्कुल लुप्त हो चुका था। उसने भगवान का चातुर्य अपना लिया जो चार वृतो पर आधारित था और मन में प्रमुख थी अहिंसा तभी तो उनकी स्तुति करते हुये कहा गया है:

हे देव। आपने शांत चित रहकर संवर देव की क्रिया दूर कर दी उससे आपको न कोई बाधा आई और न भय ही उत्पन्न हुआ। क्रोध का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। इस कारण आप सहन शील है विद्वान जन आपकी स्तुति नहीं करते अपितु इसलिये करते है आप समनि को उदनायक है।

संवर से आपकी गलती महसूस हो चली थी और उसने अपनी गलती को महसून करते हुये भगवान पार्श्वनाथ की पूजारी और अपने अन्तर में वह दिव्य प्रकाश आलोकित किया कि सब ओर लोककल्याण का उजाला फैल गया। वह भी इस भव सागर से छुटकारा मिला।

भगवान पार्श्वनाथ के व्यक्तित्वत सबसे विशेषता भर रही हैं कि उनका अहिंसा का उपदेश जनसाधरण तक पहुंच और खूंखार जातियां अपने घर हिंसा का बहिष्कार करने लगी।

एक घटना इस पर प्रकाश डालती है। कहते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ का एक शिष्य अनायास ही भीलो के कबीले में गया। इस विषय में शास्त्रों का मत इस प्रकार है।

बन्धू दत्त अनेक दुर्भाग्य पूर्ण घर गये सहता हुआ एक एक बार भीलों ने उसके साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया था और देवता के आगे बलिदान के लिये ले जाया गया। उनकी पत्नी प्रियदर्शना भीले सरदार के आश्रम में धर्म पत्नी के रूप

में रह रही थी। बलिदान का क्रूर हाथ वह देख न सके, सभवत इसलिये उसकी आंख पर पट्टी बांध दी गई थी। जब उसने देवता के आगे खड़े अपने पति की प्रार्थना करते हुए सूना तो उसने उसे पहचान लिया और उसे उनके साथियों सहित छुड़वा दिया, किन्तु भील सरदार के समक्ष समस्या थी कि देवता का नर मांस के भक्ष के बिना कैसे प्रसन्न किया जाये, जिसका उत्तर वधूदत्त ने अहिंसात्मक ढंग से दिया और देवता को फूलों फलों से सन्तुष्ट किया। भील सरदार अहिंसात्मक ढंग से दिया और देवता को फ़ूलों फलों से सन्तुष्ट किया भील सरदार अहिंसा की इस अपरिचित विधि से वड़ा प्रभावित हुआ। वह वधुदत्त के आग्रह से वाजपुर गया और वहां पधारे हुए भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन करके उनकी धर्म देशना से प्रभावित होकर वह भील जिसका एक मात्र व्यवसाय ही यात्रियों को लूटना, मारना पशुओं का आखेट करना था। सदा के लिये अहिंसा का कट्टर समर्थक बन गया। इस प्रकार के न जाने कितने हिंसकों ने भगवान पार्श्वनाथ की शरण में आकर अहिंसा धर्म दीक्षा अंगीकार कर ली।

पार्श्वनाथ से एक तरह से जनमानस की उज्जवल धवल आशाओं के प्रतीक थे और आज भी उड़ीसा बंगाल और विहार में से आदिवासी मिल जायेंगे जो मूलतः जैन धर्म वलम्बी नहीं है, मगर इसके बावजूद के पारसनाथ को कुल देवता के रूप में भगवान पार्श्वनाथ की पूजा करते हैं और सम्पूर्ण चातुर्माय का, समस्त आदेशों का पालन करते हैं।

सम्मेद शिखर का वह पावन क्षेत्र जहां भगवान पार्श्व नाथ ने तपस्या करने के बाद मोक्ष प्राप्त किया था, आज भी उनके तपस्वी जीवन और अहिंसात्मक प्रवृतियों को प्रतिष्ठित करने में सम्पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हो रहा है और विहार

बंगाल, उड़ीसा के अर्धदिवासियों के अन्तर में आज भी भगवान पार्श्वनाथ के उपदेशों की ज्योति प्रज्वलित हो रही है और समूचा सम्मेद शिखर पर्वत ही पारसनाथ कहा जाता है। इस प्रकार भगवान पार्श्वनाथ ने भगवान महावीर के लिये नई पृष्ठ भूमि तैयार कर दी थी। कि वे व्यापक रूप से फैली हुई हिंसा और मांसाहारी पृवति को रोककर हिंसा को पुनः प्रतिष्ठित कर सके। भगवान पार्श्वनाथ के प्रभाव से जन हिंसा में अपार क्षय हो गया जो पद्धति और स्वार्थवश की जाती थी। देवताओं को प्रसन्न करने के लिये दीवाने बलि में सुधार हुआ और अहिंसा ने अपना गौरवमय पद प्राप्त हो गया

फिर आये भगवान महावीर, जिनके विषय में पाठक गण 'कुन्डल पुर का राजकुमार नामक पुस्तक पढ़ने का कष्ट करेंगे।

—आप में कमजोरी है ?

—जी ।

—आपकी यह कमजोरी घातक हो सकती है। आप कुछ नान वेजी टेरियन पदार्थ ले सकेंगें ।'

'जी नहीं ।'

'सभी तो ले रहे हैं ।'

जो ले रहे हैं वे, क्या वे मरेंगे नहीं ।'

'मरेंगे क्यों नहीं, सभी को तो मरना है। जो खाते हैं वे भी मरते हैं, नही खाते हैं वे भी मरते हैं। मगर शरीर की कमजोरी दूर करने के लिये ऐसे पदार्थ को लेने की सलाह दी जाती है।

'धन्यवाद । मैं···'

'कहिये—'

'मैं निम्न निवेदन करना चाहता हूं कि मैं यह सब पदार्थ नहीं ले सकता। क्योंकि जो अखाद्य पदार्थ का सेवन करते हैं वे भी मरते हैं, बीमार पड़ते हैं और न खाने वालों से कमजोर भी होते हैं। इसलिये मैं केवल वही ले सकूंगा जो ले सकता हूं। डाक्टर केवल आग्रह कर रहे थे, दुराग्रह करना उनके लिये न उचित था न संभव अतः उन्होंने आग्रह नहीं किया। और मैंने जो कि एक रोगी की हैसियत से उपरोक्त चिकित्सक से बहस कर रहा था, अपना वजन लगभग सवाया करके दिखला दिया है कि इस संसार में मांसाहारी होना ही सबसे

बड़ी नियामत नहीं है। क्योंकि जैसा कि हम सभी जानते हैं कि ससार में जीने के लिये मांस ही नहीं कुछ तत्वों की जरूरत होती है जो प्रकृति ने बहुत से तत्वों में प्रदान किये हैं और वे तत्व ही मनुष्य को जीवित रखते हैं। तत्वों का समावेश मांसाहारी पदार्थों में भी हो सकता है और शाकाहारी पदार्थ में भी लेकिन जो लोग शाकाहारी हैं उन्हें यह तथ्य स्वीकार नहीं करना चाहिये कि केवल मांसाहार में ही जीवन के पोषण तत्व होते हैं। ऐसा होता तो इस संसार में शाकाहारी पशु ही न होते। और फिर वनस्पति, फल और फूल का अस्तित्व ही न रहता। अब तो वैज्ञानिक आधार पर ही इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि शाकाहारी पदार्थों में अधिक पोषण पदार्थ होते हैं। वैज्ञानिक शरीर के लिये नौ तत्वों की आवश्यकता बतलाते हैं। ये तत्व शाकाहारी हैं।

भारत सरकार ने अपने एक बुलिटन में जिन तत्वों के विषय में सिफारिश की है वे संसार रूम्पन वैज्ञानिकों की खोज पर आधारित है और यही वे तत्व है जो हमारे शरीर का निर्माण करते हैं उनका विकास करते है। शरीर के अंगों को पुष्ट करते हैं और आवश्यक पदार्थों की रचना करते है। तभी तो सरकारी बुलेटिन में कहा गया है कि:—

हमें शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट बनाने के लिए निम्नलिखित तत्वों वाले खाद्यों का प्रयोग प्रतिदिन करना चाहिये।

१- प्रोटीन — शारीरिक विकास, फुर्तीलापन, उत्साह और शक्ति पैदा करता है। शरीर की क्षति पूर्ति करता है। यह दालों, अनाजों, चना, मटर, दूध, दही, छाछ, पनीर, सप्रेटा दूध, फल, मेवा आदि में काफी पाया

जाता है।

२-वसा चिकनाई—शरीर में गरमी और शक्ति पैदा करता है। यह दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, बादाम, अखरोट, काजू, मूंगफली आदि में पाया जाता है।

३- खनिज लवण— भोजन शक्ति को अच्छा रखते हैं। हड्डियों को मजबूत बनाते हैं। रोगों से शरीर की रक्षा करते हैं यह ताजी साग-भाजी, फल, गेहूं, चावल दूध आदि में पाये जाते हैं।

४- कार्बोहाईड्रेट्स—शरीर में शक्ति और गरमी प्रदान करते हैं। यह चावल, गेहूं, मक्का, ज्वार बाजरा गन्ना, खजूर, मीठे, फल, केला आदि में विशेष पाये जाते है।

५- पानी नमी— शरीर की सफाई करके गन्दे पदार्थों (पसीना, मल, मुत्रादि') को शरीर से बाहर निकालता है। भोजन को पचने में और खून के दौरे में मदद देता है। शरीर में तापक्रम को समान रखता है।

६- कैलशियम— हड्डियों और दांतों को मजबूत करता है। शरीर का रंग निखारता है। बाल घने और मजबूत करता है। यह हरी सब्जियां, दूध दही, छाछ पनीर आदि में पाया जाता है।

७- लोहा— इसकी कमी से खून की लाली कम हो जाती है। इसके अभाव में खून प्रत्येक तन्तु तक आक्सीजन नहीं पहुंचा सकता है। इसी कारण खून की कमी की बीमारी हो जाती हैं। यह दही सब्जियों, अनाज, रोटी, सेम, मटर, हरी फलियों सूखे मेवों में पाया जाता है।

८- विटामिन— शरीर को स्वस्थ और रोगों से मुक्त

रखते है। ये चावल, गेहूं, दूध से बने पदार्थ, मक्खन फल, ताजी पत्तियों वाली व बिना पत्तों वाली सब्जियों, नीबू, टमाटर, सेम, दाल आदि में पाये जाते हैं।

९- कैलोरी— यह शरीर में शक्ति व गरमी मापने का पैमाना है। जैसे इंजन में कोयले के जलने से गरमी व शक्ति पैदा होती है और इंजन चलता है। उसी प्रकार भोजन करने से शरीर में गरमी और शक्ति पैदा होती है उसी के माप को कैलोरी कहते है : एक ग्राम प्रोटीन में लगभग ४ कैलोरी, १ ग्राम वसा (चिकनाई) में ९ कैलोरी और १ ग्राम कार्बोहाईड्रे-ट्स में ४ कैलोरी पाई जाती है।

स्वस्थ और पुष्ट बनने के लिए हम प्रतिदिन कुल कितना भोजन लें।

चावल, गेहूं, मक्का, ज्वार बाजरा आदि	४५० ग्राम
दूध, दही छाछ आदि	२५० ग्राम
मूंग, उड़द, चना मसूर आदि की दालें	१०० ग्राम
घीया, टिण्डे, तोरई, भिन्डी, परवल आदि बिना पत्ते वाली सब्जियां	२०० ग्राम
पालक, सरसों, मेथी, बथुआ आदि हरे पत्ते वाली सब्जयां	१२५ ग्राम
घी, मक्खन, तेल आदि की चिकनाई	५० ग्राम
आम, खरबूजा, सन्तरा केला आदि फल तथा सूखे मेवे	५० ग्राम

इसके अलावा मांसाहारी व्यक्तियों के लिये इन तथ्यों पर विचार करना भी आवश्यक है कि क्या संसार में मांस अन्डे खाकर आदमी जीवित रह सकता है और अधिक अच्छा

स्वास्थय बना सकता है। मांस और अन्डों का मनुष्य के शरीर पर प्रतिकुल ही प्रभाव पड़ता है। जैसे अन्डे के विष्य में कहा गया है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर के खून में लगभग २० ग्रेन कोलेस्ट्रोल नामक अल्कोहल पाया जाता है जो कि दिल की बिमारी पैदा करता है। अगर किसी कारण से शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ जाये तो हाई ब्लेड प्रेशर आदि कई भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते है। एक अण्डे की जरदी मनुष्य के लिए हानिकारक होती है। अण्डे खाने से खून में कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ जाती है। इस अल्कोहल की काफी मात्रा हमारे जिगर मे जमा हो जाती है फिर यह पित की थैली में पथरी को पैदा करती है। यह कोलेस्ट्रो रक्त में मिलकर हृदय में रक्त ले जाने वाली नाड़ियों में जमा हो जाता है। इससे हाई ब्लड प्रेशर जैसी बीमारियां, पैदा हो जाती है। इसके विपरीत फल व सब्जियों में कोलेस्ट्रोल बिल्कुल नहीं पाया जाता है, अतः शाकाहार होना ही सर्वश्रेष्ट है।

इन डाक्टरो ने आगे लिखा है कि अण्डे में नाइट्रोजन जैसी विषैली, गैस, फास्फोरस एसिड की पर्याप्त मात्रा और चरबी होती है। इस कारण अपने शरीर में तेजाबी मादा पैदा करते हैं जिससे शरीर में गैस की कई बीमारियां फूट पड़ती है।

एक और प्रसिद्ध डाक्टर ई० वी० मेकाकालम ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक के पृष्ठ १७१ पर लिखा है, अण्डों में कैलशियम की बहुत कमी होती है और कार्बोहाइड्रेट् तो होते ही नहीं। इस कारण यह बड़ी आंतों में जाकर सड़ांध मारते है और सड़ने वाले कीटाणुओं को बढ़ावा देकर भयंकर बीमारियों को पैदा करते है।

उन्होने इसी पुस्तक में पृष्ठ २६६ पर अपना एक अनुभव लिखा है, कुछ बन्दरों को जब अण्डे खिलाये गये तो उनके शरीरो मे सड़ांध पैरा करने वाले बैक्टीरिया पैदा होने लगे। वे बन्दर सुस्त हो गये। उन्होंने अपने सिरों को झुका दिया और वे वृद्ध से बन गये। उनका पेशाब रूक-रूक कर, सड़ कर व गहरे रंग का आने लगा। जब उन्हे ग्लुकोज दिया गया तब वे फिर ठीक हो गये। इस प्रकार जैसे शाकाहारी बन्दरों आदि पशुओं को अण्ड माफिक नहीं आते, उन्हें बीमार कर देते है, उसी प्रकार शाकाहारी मनुष्य के लिये भी अन्डे कभी माफिक नहीं आ सकते।

अनेक डाक्टरों का यह अनुभव है कि जब पशुओं को अण्डों की सुखी सफेदी खिलाई गई तो उनमें कुछ को लकवा मार गया कुछ को कैंसर हो गया और बहुत सौ को चर्म रोग हो गये। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि अण्डे का सबसे हानिकानक भाग अण्डे की सफे ी है।

लन्दन के एक बहुत प्रसिद्ध डाक्टर मि० हेग कहते हैं, मांस में यूरिया और यूरिक एसिड नाम के दो बहुत ही भयानक विष पाये जाते हैं जो मनुष्य के शरीर में जाकर भयानक रोग को उत्पन्न करते है। लिखा है, नीचे लिखे प्रत्येक प्रकार के मांस की आधा किलो मात्रा ले तो काड मछली में चार ग्रेन, गाय की पसली में आठ ग्रेन, सूअर की कमर तथा रान में आठ ग्रेन, तुर्की मुर्गी में आठ ग्रेन, चूजे में नो ग्रेन, गाय की पीठ तथा पीछे के अंग में नो ग्रेन, गाय के भुने मांस में चौदह ग्रेन गाय के यकृत में उन्नीस ग्रेन और मांस के रस में पचास ग्रेन यह भयंकर विष पाया जाता है। दालों में व बनास्पतियों में इस विष की मात्रा बहुत ही कम अर्थात न के बराबर ही पाई जाती है। पनीर, दूध से बने पदार्थो चावल व गोभी

आदि में यूरिक एसिड बिल्कुल भी नहीं पाया जाता।

डाक्टर हैग आगे लिखते है, जब यह विप मनुष्य के रक्त में मिल जाता है तब दिमागी बीमारियां, हिस्टीरिया, सुस्ती नींद का अधिक आना, सांस रोग, जिगर की खराबी, अजीर्ण रोग, शरीर में रक्त की कमी आदि बहुत सी बीमारियों को पैदा करता है। यह विप जब किसी गांठ या जोड़ में रुक जाता है तो बात रोग, गठिया, बाय, नाक और कलेजे की दाह, पेट के विभिन्न रोग, शरीर के विभिन्न दर्द, मलेरिया, निमोनिया, इन्फलुजा और क्षय रोग उत्पन्न करता है।

डाक्टर हैग आगे लिखते हैं, मांस में कैलशियम की बहुत कमी होती है और कार्बोहाइड्रस के नितान्त अभाव के कारण मांस पेट में जाकर सड़ता है और अण्डे की तरह यह भी सड़ांध पैदा करने वाले कीटाणुओं को बढ़ावा देता है इससे गैस की भयकर बीमारियां पैदा होती है।

डाक्टर जोशिया आल्डफल्ड डी. सी. ए. एम. आर. सी. एल. आर. सी. पी. सीनियर फिजीशियन मारगरेट हासपिटल बामले का भी अनुभव है कि मांस, मछली, अंडा अप्राकृतिक भोजन है। इनसे शरीर में अनेक भयंकर बीमारियां जैसे कैंसर, क्षय, ज्वर, यकृत मृगी, वात रोग, पाद शोथ, नासूर आदि उत्पन्न होते हैं।

कोलगेट यूनिवर्सिटी (यू. एस. ए.) के एक वैज्ञानिक श्री ल्याड ने अपने परीक्षणों के आधार पर लिखा है कि मांस में कैलशियम कार्बोहाइड्रेट्रस नहीं होते इसीलिए उसे खाने वाले चिड़चिड़े, क्रोधी, निराशावादी और असहिष्णु बन जाते हैं। शाकाहार में कैलशियम और कार्बोहाड्रेट्स की मात्रा कम होती है इसलिए शाकाहारी प्रसन्नचित्त, आशावादी, सहनशील व शान्तिप्रिय बनते हैं। कठिनाइयां उनके साहस और धैर्य को

बंधाती है। वे नरक में भी स्वर्ग के विचार रखते हैं।

इग्लैण्ड के नगरों और गांवों का निरीक्षण करने के पश्चात् मि. किंग्सफोर्ड और मि. हेनरी ने लिखा है, प्राचीन काल में अग्रेजी लोग अत्यन्त बलिष्ट, स्वस्थ, सुगठित शरीर वाले और अधिक परिश्रमी होते थे। परन्तु जबसे उनके भोजन में प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर मांस, मदिरा, अण्डे, मछली ने अधिकार कर लिया है तबसे उनका स्वास्थय व शक्ति धीरे-धीरे घट रही है। पच्चीस वर्ष की अवस्था में ही उनके शरीर का अध: पतन हो जाता है। यह भी देखने में आया है कि मांसाहारी परिवारों के लड़के-लड़कियों का स्वास्थय बहुत गिरा हुआ पाया गया, उनमें हृदय रोग व कैंसर की शिकायत पाई गई। अपनी प्रजा के गिरते हुए स्वास्थय को देखकर इग्लैंड की सरकार की ओर से ब्रिट्रिश बोर्ड आफ एग्रीकल्चर ने समाचार पत्र द्वारा एक लेख से अपनी अंग्रेजी प्रजा को चेतावनी दी, मासांहार छोड़कर उसके बदले दूध, पनीर और मसूर की दाल का प्रयोग करो जो मांस के समान शरीर में मांस पैदा करते हैं और मूल्य में सस्ते हैं। शाक और फल-फूलादि का अधिक प्रयोग करो। ऐसा चेतावनियों के कारण, पश्चिमी देशों में सैकड़ों शाकाहारी सोसाइटियों की स्थापना हुई है और वहां के निवासी अधिकाधिक संख्या में शाकाहार को अपनाते जा रहे हैं।

फ्रांस के एक विद्वान श्री किंग्सने फोर्ड ने लिखा है, यहां पर भी लोगों का स्वास्थय और शरीर का बल पाशविक भोजन के कारण दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अब वहां पर भी लोग शाकाहार की ओर बढ़ रहे हैं।

टिम्बर लैंड के देहाती की अवस्था पर मि० स्माइल ने लिखा है, जो व्यक्ति दूध, पनीर, फल, रोटी और सब्जियों का

प्रयोग करते हैं वे मांस मन्दिरा का सेवान करने वालों से काफी स्वस्थ, बलवान और परिश्रमी पाये जाते हैं।

मेक्सिको के रहने वाले साधारण अनाज का रोटियों और फलों का सेवन करते हैं कि मांस का सेवन करने वाले मजदूर उनका किसी प्रकार का सामना नहीं कर सकते। इन शाकाहारियों की शक्ति को देख कर आश्चर्य होता है।

माल्टा के निवास बहुत मोटे-ताजे होते पर भी खूब बलवान होते हैं क्योंकि वे लोग सब्जी, फल व रोटी का सेवन करते हैं।

अमरीका के विद्वान श्री चैस ने स्मरना निवासियों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे बहुत मजबूत व बलवान होते हैं। वहां का एक-एक आदमी पांच-पांच मन वजन तक का बोझा उठा सकता है कारण यही है कि वे लोग फल और बहुत साधारण भोजन करते हैं।

कप्तान सी. एफ. ने हस्तपानियों में भूर के मजदूरों की दशा देखकर लिखा है कि उनके शरीर में शक्ति होती है और वे बड़ा भारी बोझ उठाते हैं, कारण कि वे लोग गेहूं की रोटियों के साथ अंगूर खाते हैं।

डाक्टर ब्रुक ने नार्वे के लोगों के विषय में लिखा है कि वे सदा प्रसन्नचित दीर्घायु और स्वस्थ पाये जाते हैं कारण कि वे लोग मांस व अण्डों से बड़ी सख्त घृणा करते हैं।

यूनान के एक समाचार पत्र ने लिखा है कि जब से यहां के निवासियों ने शाकाहार छोड़कर मांस मदिरा का सेवन शुरू कर दिया है तब से यूनान के लोग सुस्त और निकम्मेपन के लिए प्रसिद्ध हो रहे हैं। इन लोगों को चाहिये कि स्वास्थ्य के लिए दोषरहित भोजन, हरी सब्जी, फल, मेवे, अनाज व दूध का सेवन करें।

डाक्टर आनन्द निमल सूरिया ने खोज के पश्चात लिखा है कि दूध व दालों में बढ़िया प्रोटीन पाये जाते हैं। मांस पशु पक्षियों को तड़पाकर मारने पर मिलता है। जब पशु पक्षियों को निर्दयता से मारते हैं तब वह तड़पते हैं, दुखी होते हैं और भयभीत होते हैं। यह बुरी भावनाएं उनके शरीर में रासायनिक परिवर्तन करके उनके मांस व खून को अम्लोतपादक बना देती है। इसके अतिरिक्त मरे हुए पशुओं की रक्तनली के विषैले पदार्थ प्रोटीन को गन्दा कर देते हैं। डाक्टर साहब आगे लिखते हैं कि उन्होंने मरे हुए व मारे हुए पशुओं के मृत शरीर को ध्यान से देखा है। जिससे मालूम पड़ा है कि उनकी बड़ी आते विषैले कीटाणुओं से भरी पड़ी है। मांस को उबालने पर भी खुर्दबीन से परीक्षण किया परन्तु फिर भी उसमें बहुत सारे भयंकर कीटाणु पाये गये जो शरीर में अनेकों नहीं सैंकड़ों बीमारियां पैदा करते हैं। इसलिए शुद्ध व बढ़िया प्रोटीन न तो दालों, अनाजों व दूध में ही पाया जाता है।

वर्ल्ड हैल्थ आर्गनाइजेशन की विशेष समिति ने सर्वेक्षण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि २२ विकसित और समृद्ध देशों में जहां कि मुख्य रूप में मांसाहार किया जाता है प्रति एक लाख व्यक्तियों में ४०० से अधिक व्यक्ति हृदय रोगों से मरते हैं यह संख्या फिनलैन्ड में सबसे अधिक अर्थात् ४४२ है। जबकि एशियाई देशों में अपेक्षाकृत बहुत कम है। जापान में १ लाख व्यक्तियों में सिर्फ ५१ व्यक्ति हृदय रोगों से मरते हैं। सौभाग्य से यह संख्या भारत में अभी ४२ तक ही पहुंची है और निश्चय ही इसका श्रेय भारत की शाकाहार पद्धति को ही है।

इन कारणों के अतिरिक्त सर्वेक्षणों से यह तथ्य भी प्रकाश में आया है कि जिन विकसित और समृद्ध देशों में जितनी अधिक मोटर कारें हैं और वहां के निवासी जितनी अधिक

सिगरेट पीते है, दिल के दौरे के रोगी वहां उतने ही अधिक है।

जर्मन के एक प्रसिद्ध विद्वान मि० हैकल ने लिखा है कि जहां तक परीक्षा से मालूम हुआ है मनुष्य और वन मानुष के शरीर की बनावट आपस में मिलती है। हमारे शरीर की भांति उसके भी हड्डियां व नसें होती हैं। मनुष्य के आमरूप में पाचन क्रिया के लिये जो विशेषता पाई जाती है वह वन मानुस में भी होती है। जब वन मानुस मांसाहारी नहीं है तो मनुष्य क्यों है।

क्या मनुष्य जन्म से मांसाहारी है ?

मनुष्य शेर नहीं है। वह मांस पर जीवित नहीं रह सकता यह बात अब सिद्ध हो चुकी है और उसका आधार है उसके शरीर के अंग जैसे:—

—मनुष्य के दांत। —नाखून।
—शारीरिक ढांचा। —जबड़ा।
—पाचक यन्त्र।

इसका आधार यह है कि मनुष्य केवल शाकाहारी पशुओं को ही अपज आहार बनाता है, जैसे भेड, बकरी गाय, ऊट, मछली, मुर्गी आदि शेर चीते और भेड़िये का मांस इसलिये नहीं खाया जाता क्योंकि वहां बखेला होता है। मांस प्राप्त करने के लिये जिन पशुओं को पाला जाता है वे मांस पर जीवित न रहकर अनाज पर जीवित रहते हैं। और फिर जरा मुकाबला करिये मांस फलों का मांस में दुर्गंध, फलों में सुगन्ध। मांस खाने और बेचने वाले उसे ढककर रखते हैं। सम्भवत: इन्हीं कारणों से हमारे महापुरूषों ने शाकाहारी बनने की प्रेरणा दी थी।

महापुरूष और मांसाहार

महात्मा बुद्ध ने कहा है.—

मांस दुर्गंधित मय, मलेच्छ का सेवन है अत: आर्यजनों

के लिये अभक्ष और त्याज्य है। आर्य पुरुष मांस और खून का सेवन नहीं करते। क्योंकि मांस का भक्षण साधुत्व और और ब्राह्मणत्व को नष्ट कर देता है। आहार के लिये हत्या करना एक अपराध हैं और हत्यारा एक अपराधी है। मैंने कदापि किसी स्थान पर मांस खाने की सिफारिश नहीं की है न इसे हर तरह से उत्तम भोजन कहा और न इसे खाने का आदेश दिया है।

जो प्राणी लोभ के वशीभूत होकर दूसरे के प्राणों को हरते हैं अथवा किसी भी तरह इससे सम्बधित है, वे पापी हैं। दुष्ट है और ताडना के अधिकारी हैं। क्योंकि जो व्यक्ति दूसरे का मांस खाता है वास्तव में वह अपने प्रियतम का अंग खाता है।

मांस खाना स्वास्थ्य प्रद भी नहीं है इसके खाने से जैसे भयंकर रोग हो जाते हैं और शरीर में विषैले कीड़े एवं जन्तु पहुंचते जाते हैं अतः चावल और गेहूं, मूंग, उडद, घी, तेल, दूध, शक्कर, खांड, मिश्री आदि ही लेना श्रेयस्कर है।

महात्मा गांधी

प्रतिज्ञा :

मैं मांस नहीं खाऊंगा।

शराब नहीं चखूंगा।

पर स्त्री का स्पर्श नहीं करूंगा।

वचन: —

मैं मर जाना पसन्द करूंगा मगर मांस नहीं खाऊंगा मांस खाना मनुष्य का नैतिक पतन है।

विचार :

चाहे कुछ भी हो कोई भी धर्म हमें अण्डे खाने की अथवा मांस के उपयोग की इजाज़त नहीं देता।

(महाभारत से उद्धृत वाक्यांश)

जो दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहते हैं उससे अधिक निर्दयी या क्षुद्र व्यक्ति कोई नहीं होगा।

जो शुभ फल प्राणियों पर दया करनेमे मिलता है वह फल न तो वेद पाठ से, न दान से न तीर्थ यात्रा अथवा पवित्र फल स्नान से मिल सकता हैं। जो तरह तरह के अमृत से भरे शाकाहारी उत्तम पदार्थ छोड़कर घिनौने मांस का सेवन करते हैं, वे वास्तव में राक्षस होता है।

ऋग्वेद : अर्थ व वेद

अहो, भद्र उन सबका विनाश कर दो, उसका सिर फोड़ डालो जो पशु मांस खाते हैं।

अग्नि मांसाहारी को लाल जाती है।

हे अग्नि देवता। मांसाहारी को अपने मुंह में भर लो।

जो लोग मांस भक्षण करते हैं, मैं उनका सर्वनाश करने को तत्पर रहता हूं।

महर्षि दयानन्द

वेदों में मांस खाने का कोई उल्लेख नहीं है।

मांस का प्रचार कर"े वाले सभी राक्षस वृति के धूर्त हैं।

मांसाहारी जब कुछ काल पश्चात पशु न मिलेंग तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ेंगे या नहीं।

मांस शराब सेवन मनुष्य के शरीर, वीर्य, आदि धातु दुर्गन्ध के कारण दुषित हो जाते हैं।

भगवान यीशू के उपदेश

यदि जीवों का वध करने में धर्म है तो हे भाई। पाप किसे कहेंगे ? यदि जीव वध करने वाला अपने आपको मुनि समझे तो कसाई किसे कहेंगे ?

ईसाई धर्म के उपदेश: किसी प्राणी की हत्या मत करो :

(प्रभु की पांचवी आज्ञा)

जब तुम्हारे पिता प्रभु दयाल है तब उसकी सन्तान तुम भी दयावान बनो, अर्थात किसी को मत सताओ।

(सेण्ट लइकस—यू टैस्टामैंट ३६—६)

देखो मैंने पृथ्वी पर सब प्रकार की जड़ी बूटियां तथा उनके बीज दिये हैं और साथ में तरह तरह के फलों से लदे पेड़ पौधे भी दिये हैं तथा उनके बीज भी—उन सब शाका-हारी पदार्थों को खाओ वे तुम्हारे लिये मांस का काम देंगे।

तुम मेरे पास सदैव एक पवित्र आत्मा पाओगे यदि तुम किसी का भी मांस न खाओ।

भारतीय सन्तों की वाणी

जीवों पर दया करना सबसे बड़ा धर्म है। वह पुरुष उत्तम है जो दूसरों पर दया करता है।

(मांझ महल्ला ५ बारा माह (माघ माह))

जो व्यक्ति मांस मछली और शराब का सेवन करते हैं उनका धर्म, कर्म, जप, तप, सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।

भगवान नानक देव:— (—गुरू ग्रन्थ साहब—कबीर वाणी)

सब राक्षस जैसे क्रूर पुरुषों को प्रभु का नाम जपाया। उनसे मांस खाने की आदत छुड़वाई। उन राक्षस पुरुषों ने जीवों का वध करने की आदत छोड़ दी। सच कहा है महा-त्माओं की संगति सुख देने वाली होती है।

(नानक प्रकाश)

हम तुम्हारे यहां भोजन कदापि नहीं कर सकते क्योंकि तुम सब जीवों को दुख देने वाले हो। सबसे पहले तुम मांस खाना छोड़ोगे जिस कारण तुम्हारा जीवन नष्ट हो रहा है। दुख देने वाली तामसी वृति को छोड़कर सुख कारी प्रभु की भक्ति में लग जाओ।

(नानक प्रकाश पुर्वार्ध अध्याय ५५)

(अकबर महान और अहिंसा आन्दोलन)

अहिंसा मनुष्य को अपग नहीं अपितु शिष्टता और सौजन्यता का प्रतीक बनाती है तभी भारत के सभी महान व्यक्तियों ने अहिंसा को अपने अनुसार अपनाया था और गौरव मय महसूस किया था। इस विषय में मुगल साम्राज्य को स्वर्ण युग के द्वार तक पहुंचाने वाला बादशाह अकबर महान का उल्लेख न करना उचित होगा। अकबर महान ने स्वयं अहिंसा की खोज की थी और अहिंसा के प्रति आकृष्ट हुये थे। बादशाह अकबर ने भी अहिंसा का अर्थ समझा था। और उन महान व्यक्तियों ने यह जान लिया था। कि जीवन में अगर सफल होना है तो अहिंसा का प्रश्रय देना होगा यही कारण है कि अकबर महान ने जैन आचार्य हरि विजय सुरिका से धर्म सूत्र प्राप्त किया था। इस विषय में श्री भग्निव्रत के कादम्बिनी में प्रकाशित लेख में इस प्रकार चर्चा की गई थी—

मई १५७८ ई० तक अक्तूबर की यह विक्षुब्धता इतनी बढ़ी कि उसका व्यवहार असभ्य होने लगे।

क्यों ? सम्पूर्ण वैभव के बीच भी वह अपने आप को असंतुस्त क्षुब्ध महसूस करता और जीवन की प्रयोजन हीनता में दुखी रहता। एक के बाद एक युद्ध में विजयी होने वाला अकबर अपने अन्तर में स्थायी शान्ति और चिरेतन संतोष का अभिलाषी था विवश और क्षुब्ध सम्राट धीरे धीरे और दर्शन की दिशा में अभिशाप हुआ था—

और जैसे जैसे वैभव बढ़ता गया। स्थिति अनुकूल होती गई अकबर महान की धर्म धाम बढ़ती गई।

कहते है एक दिन सम्राट को झेलम के किनारे शिकार खेलते खेलते कुछ गोपनीय अनुभूति हुई। अबुल फजल के अनु-

सार तो उस दिन मासो के साक्षातकार की उसने किरण वे उसे आकृष्ट किया था। जो कुछ भी हो परन्तु यह सच है कि. इस बड़ी भारी मानसिक अथवा उथल पुथल के समय में ही सम्राट को आगरा के जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा गुजरात के मुनि हीर विजय और उनकी आलौकिक साधना ठीक था ये सुनने को मिली।

वह सम्राट अकबर अपने पिता हुंमायू के बाद सन १६५६ ई० में जब सिंहासन का उत्तराधिकारी बना राज्य छिन्न भिन्न और खडित हुई स्थिति में था और वास्तविक स्थिति में तो बोयारखां के नेतृत्व में एक छोटी सी सेना बल पूर्वक पंजाब के कुछ जिलों में अधिकार किये थे। मगर उस स्थिति में भी उनमें अपार और अदम्य साहस था जिसके बल पर उन्होंने अच्छा खामा साम्राज्य बना लिया था। मगर मन ऐसा क्षुब्ध रहता था कि उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती थी। आखिर इस शान्ति को प्राप्त करने का एक तरीका ही निकाल लिया गया और—सन १५८२ ई० में सम्राट ने गुजरात के मुगल सूबेदार शाहबूद्दीन अहमद खां तथा आगरा की जैन संघ की मारफत हीर विजय जी को हाशी निमन्त्रण भेजा।

अकबर की अहिंसा तथा अन्य जैन सिद्धान्तों से अवगत कराने तथा अन्य जैन सिद्धान्तों से अवगत कराने वाले मुनि हीर विजयजी सूरि का जन्म गुजरात के सुदुर उत्तरी सीमांत स्थित पालनपुर में सन १५२६ ई० में हुआ था। १५५४ ई० में उन्होंने तत्कालीन जैन आचार्य श्री विजयदान सूरि से सिरोही में दीक्षा ली और अपनी अथक साधना तथा सतत सेवा के फलस्वरूप सन १५६६ ई० में आचार्य विजयदान सूरि के निधन से रिक्त स्थान पर वे जैन आचार्य बनाये गये।

सम्राट का निमंत्रण उन्हें अपनी गांधार यात्रा के बीच

मिला। शाही निमन्त्रण पर सभी साथी संतों की परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाएं थी। कुछ लोग उसे ठुकराने के भी पक्ष मे थे, परन्तु स्वयं आचार्य का मत यह था कि सम्राट से भेंट करके उस उपदेशों से अवगत कराने के इस अवसर का उपयोग जरूर करना चाहिये और अंत में सब ने यह उचित समझा।

अपने निश्चय के अनुसार जैन साधुओं का दल गांधार की यात्रा पूरी करके जब गुजरात की राजधानी अहमदाबाद पहुंचा तो वातावरण पूरी तरह से बदला हुआ प्रतीत हो रहा था। दिल्ली दरबार के इशारों पर गुजरात का सूबेदार शाह-बुद्दीन शाही अतिथि की यात्रा का इंतजाम करने और जैन साधुओं को सभी राजकीय सुविधाएं देने के लिये उतावला हो रहा था। जैन मुनियों के अहमदाबाद पहुंचते ही सूबेदार ने उन्हें सूबाई दरबार में निमंत्रित करके उनका सार्वजनिक अभिनंदन किया और फतेहपुर सीकरी की यात्रा के लिए सारी सुविधाओं के अंगीकृत किये जाने का प्रस्ताव रखा। साधुओं की मर्यादाओं से बंधे हुए जैन आचार्य ने इन सब सुविधाओं को अस्वीकार करते हुए फतेहपुर सीकरी की अपनी ऐतिहासिक पदयात्रा आरम्भ की।

जैन आचार्य का संत समुदाय गांव-गांव में सत्य-अहिंसा अपरिग्रह के पवित्र उपदेश देता हुआ तथा सांसारिकता की मोह-निद्रा में सोते लोगों को नवसारिकता की मोह-निद्रा में सोते लोगों को नवजागरण का संदेश देता हुआ चलता रहा। अंततः ७ जून १५८३ ई० को ६७ साधुओं का यह दल जब फतेहपुर सीकरी पहुंचा तो आगरा का जैन समाज नगर के प्रवेश द्वार पर स्वागत के लिए प्रस्तुत था। महावीर स्वामी की जय-की गगनभेदी ध्वनियों के साथ मुनि-मण्डल ने वहां अपने पड़ाव डाले।

सम्राट तो जैन आचार्य से मिलने को उत्सुक था ही। आचार्य के आगमन की सूचना पहुंचते ही उसने अपने अनन्य मित्र अबुलफजल को आचार्य से भेंट करने के लिए भेजा। वार्तालाप और विचार विनिमय के लंबे दौर के बाद जब अबुलफजल ने विदा ली तो वह न सिर्फ हार विजय जी की विद्वता से प्रभावित हुआ बल्कि उसे जीवन की मूल समस्या के प्रति उसके अपने सूफी दृष्टि कोण और जैन आचार्य के दृष्टिकोण में आश्चर्यजनक समानता भी मिली। अबुलफजल की इस भेंट के बाद सम्राट ने जैन संत को अपने दरबार में निमंत्रित किया। निरंतर दो वर्ष तक हार विजयजी फतेहपुर सीकरी और आगरा में रहते हुए अकबर को जैन धर्म उपदेशों का ज्ञान कराते रहे। उनकी साधना से प्रभावित होकर सम्राट ने उन्हें जगत गुरू की उपाधि से भी विभूषित किया। सम्राट के ऊपर सबसे बडा प्रभाव तो यह पड़ा कि वह धीरे-धीरे मांसाहार से विमुख होने लगा और उसने शाही फरमान निकाल कर जैन पर्वों पर राज्य भर में पशु वध और मांस भक्षण पर प्रतिबंध लगा दिया:—

हार विजय सूरि के साथ जैन आचार्यों से अकबर का जो संपर्क शुरू हुआ वह उनके बाद भी बना रहा। सन १५८६ ई० से जब अकबर ने लाहौर में अपना दरबार, लगाना शुरू किया तो गुजरात से जैन संत भानुचन्द्र उपाध्याय उस में शामिल हुए। भानुचन्द्र ने ही सम्राट को सूर्य के सहस्त्रनाम सिखाये थे और सम्राट उन का प्रतिदिन जाप करता था। वह प्रातःकाल भक्तिपूर्वक सूर्य को नमस्कार भी करता तथा समय समय पर सूर्यापासना से संबन्धित अनेक अनुष्ठान भी करता रहता था। धीरे-धीरे यह स्थिति आयी कि अकबर के सारे राज्य में साल

में छः मास पशुवध और मांस-भक्षण बन्द हो गया। स्वयं सम्राट अपने इस फरमान का पालन करने वालों में सबसे आगे था।

सन् १५९५ ई० में जब अकबर को हार विजयजी के निधन का संवाद मिला तो सम्राट को अत्यंत दुख हुआ और उसने शत्रुंजय पहाड़ी पर स्थिति आदीश्वर के मंन्दिर के लिए बहुत सारी भूमि और अन्य आवश्यक सहायता दी। इस मंन्दिर की दीवारों पर संस्कृत का जो लेख उत्कीर्ण है उसमें हार विजय जी की साधना और अकबर की उदारता की प्रशंसा की गयी है। मांस न खाने की प्रवृति पर अभी भी कार्य चालू है।

मानवीय भोजन में अहिंसा का प्रादुर्भाव लाने का कार्य अभी भी रूका नहीं है निरंतर चल रहा है। इस सम्बन्ध में हम योगा श्रम वर्धा का वह वतव्य प्रकाशित कर रहे हैं जिसके अनुसार गेहूं में सबसे अधिक शक्ति विद्यमान है अपनी इस बात की पुष्टी करते हुये उनका कथन है कि

गेहूं के पौधे में रोगनाशक ईश्वर प्रदत्त अपूर्व गुणःहैं।

गेहूं का प्रयोग हम सभी लोग बारहों मास भोजन में करते रहते है, पर उसमें क्या गुण है, इस पर लोगों ने बहुत कम विचार किया है। मोटे तौर से हम लोग इतना ही जानते हैं कि यह एक उत्तम शक्तिदायक खाद्य पदार्थ है। कुछ लोगों ने यह भी पता लगाया है कि मुख्य शक्ति गेहूं के चोकर में है, जिसे प्रायः लोग आटा या मैदा खाना पसन्द करते हैं और लाभदायक चोकर-सहित मैदा आटा खाना पसन्द नहीं करते। फल यह होता है कि शक्ति रहित गूदा (मैदा) खाते रहने से हम लोग जीवन भर अनेक प्रकार की बीमारियों से पीड़ित रहा करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक लोग प्रायः चोकर सहित आटा खाने पर जोर देते हैं, जिससे पेट की तमाम बीमारियां अच्छी हो

जाती हैं। २४ घंटे भिगोकर सवेरे गेहूं का नाश्ता करने से अथवा चोकर का हलुआ खाने से शक्ति आती है। फिर भी लोग झंझट से बचने के लिए डाक्टरी दवाइयों के फेर में अधिक रहते है, जिनके सेवन से नयी नयी बीमारियां दिनो-दिन बढ़ती जा रही है, फिर लोग चेतते नही है। स्त्रियां तो विशेष कर दवा की भक्तिनी हो गयी है। घर में रोज काम में आने वाली और भी अनेक चीजे है, जिनके उचित प्रयोग से अनेक साधारण बीमारियां अच्छी हो सकती है, जिन्हें कि हमारी बडी माताए अधिक जानती थी, पर आजकल की नयी स्त्रियां उनके बनाने की झंझट से बचने के लिए बनी-बनायी दवाइयों का प्रयोग ही ज़्यादा पसंद करती है, फिर चाहे उनसे दिन-दिन स्वास्थय गिरता ही क्यों न जाये।

अभी हाल में अमरीका की एक महिला डाक्टर ने गेहूँ की शक्ति के सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान तथा अनेकानेक प्रयोग करके एक बडी पुस्तक लिखी है।

उसमें उन्होंने अपने सब अनुसन्धानों का पूरा विवरण दिया है और अनेकानेक असाध्य रोगियों पर गेहूं के छोटे छोटे पौधो का रस देकर उनके कठिन से कठिन रोग अच्छे किये हैं। वे कहती हैं कि संसार में ऐसा कोई रोग नहीं है जो इसके सेवन से अच्छा न हो सके। कैंसर के बड़े बड़े भयकर रोग उन्होंने अच्छे किये है। जिन्हें डाक्टरो ने असाध्य समझकर जवाब दे दिया था। और वे मरणप्राय: अवस्था में अस्पताल से निकाल दिए गए थे। ऐसी हितकर चीज यह कई रोग में संपूर्ण ढंग से हितकर साबित हुये हैं। अनेकानेक भगंदर, बवासीर, मधुमेह, गठियाबाय, पीलियाज्वर, दमा, खांसी सगंरहा के पुराने से पुराने असाध्य रोगी उन्होंने इस साधारण

से रस से अच्छे किये हैं। बुढ़ापे की कमजोरी दूर करने में तो यह रामबाण ही है। अमेरिका के अनेकानेक बड़े बड़े डाक्टरों ने इस बात का समर्थन किया है और अब बम्बई और गुजरात प्रांत में भी अनेक लोग इसका प्रयोग करके लाभ उठा रहे हैं भंयकर फोड़ो और घावों पर इसकी लुगदी बांधने से जल्दी लाभ होता है।

इस अमृत समान रस के तैयार करने की विधि भी उक्त महिला डाक्टर ने विस्तारपूर्वक लिख दी है, ताकि प्रत्येक साधारण मनुष्य भी इसे तैयार करके स्वयं लाभ उठा सके और दूसरे अन्य रोगियों को भी लाभ पहुँचा सके। इस रस को लोग अमृत रस की उपमा देते हैं, कहते हैं कि यह रस मनुष्य के रक्त से ४० फीसदी मेल खाता है। ऐसी अदभुत चीज आज तक कहीं देखने सुनने में नहीं आयी थी। इसके तैयार करने की विधि बहुत ही सरल है। प्रत्येक मनुष्य अपने घर में इसे आसानी से तैयार कर सकता है। कहीं इसे मोल लेने जाना नहीं पड़ता, न यह पेटेन्ट दवा के रूप में बिकती है। यह तो रोज ताजी बनाकर ताजी ही सेवन करनी पड़ती है।

इस रस के बनाने की विधि इस प्रकार है—

आप १०–१२ चीड़ के टूटे फूटे बक्सों में, बांस की टोकरी में अथवा मिट्टी के गमलों में अच्छी मिट्टी भर कर उनमें बारी-बारी से कुछ उत्तम गेहूं के दाने बो दीजिये थोड़ा २ पानी डालते जाइये, धूप न लगे तो अच्छा है। तीन चार दिन बादपेड़ उग जायेंगे और आठ दस दिन के बाद बीता—बीता डेढ़ बीता (७–८ इंच) भरके हो जायेंगे, तब आप उसमें से पहले दिन के बोए हुए ३०–४० पेड़ जड़ सहित उखाड़कर जड़ को काट फेंक दीजिये और बचे हुए डंठल और पत्तियों को धोकर साफ सिल पर थोड़े पानी के साथ पीसकर आधे गिलास के लगभग रस छानकर तैयार कर लीजिये और रोगी को

तत्काल वह ताजा रस तैयार करके पिलाईये – बस आप देखेंगे कि भयंकर से भयंकर रोग आठ दस या पन्द्रह बीस दिन बाद भागने लगेगा और दो तीन महीने में वह मरणप्राय प्राणी एकदम रोगमुक्त होकर पहिले के समान हट्टा कट्टा स्वस्थय मनुष्य हो जायेगा। रस छानने में जो फजूला निकले उसे भी आप नमक वगैरहा डालकर भोजन के साथ खाले तो बहुत अच्छा है। रस निकालने के झंझट से बचना चाहे तो आप उन पोधों को चाकू से महीन महीन काटकर भोजन के साथ सलाद की तरह भी सेवन कर सकते हैं, परन्तु उसके साथ कोई फल न मिलाये जाये। साग सब्जी मिलाकर खूब शौक से खाइये, आप देखियेगा कि इस ईश्वर प्रदत अमृत के सामने डाक्टर वैद्यों की दवाईयां सब बेकार हो जायेगी। ऐसा उस महिला डाक्टर का दावा है।

गेहूं के पौधे ७–८ ई० से ज्यादा बड़े न होने पाये, तभी उन्हें काम में लाया जाय। इसी कारण १०–१२ गमले या चौड़ के बक्स रखकर बारी-बारी (प्रायः प्रतिदिन दो एक गमले में) आप को गेहूं के दाने बोने पड़ेगे। जैसे जैसे गमले खाली होते जाएं, वैसे वैसे उसमें गेहूं बोते चले जाइये। इस प्रकार यह गेहूं घर में प्रायः बारहो मास उगाया जा सकता है।

उक्त महिला डाक्टर ने अपनी प्रयोगशाला में हजारों असाध्य रोगियों पर इस रस का प्रयोग किया है और वे कहती है कि उनमें से किसी एक मामले में भी असफलता नहीं हुई।

रस निकाल कर ज्यादा देर नहीं रखना चाहिये। ताजा ही सेवन कर लेना चाहिये। घण्टा दो घण्टा रख छोड़ने से उसकी शक्ति घट जाती है और तीन चार घण्टे बाद तो वह बिलकुल व्यर्थ ही हो जाता है। डंठल और पत्ते इतनी जल्दी

खराब नहीं होते। वे एक दो दिन हिफाजत से रक्खे जाए तो विशेष हानि नहीं पहुंचती।

इसके साथ साथ आप एक काम और कर सकते हैं, वह यह कि आप आधा कप गेहूं लेकर भीगो लीजिये और किसी बर्तन में डालकर उसमें दो कप पानी भर दीजिये, बारह घण्टे बाद वह पानी निकालकर आप सवेरे-शाम पी लिया कीजिये। वह आप के रोग को निर्मूल करने में और अधिक सहायता करेगा। बचे हुए गेहूं आप नमक मिर्च डालकर वैसे भी खा सकते हैं। अथवा पीसकर हलुवा बनाकर सेवन कर सकते हैं। अथवा सुखाकर आटा पिसवा सकते हैं—सब प्रकार लाभ ही लाभ हैं।

ऐसा उपयोगी है यह रोज काम में आने वाला गेहूं। उपर्युक्त अंग्रेजी पुस्तक की लेखिका ने बहुत प्रसन्न मन से सबको छूट दे रक्खी है कि संसार में चाहें जो व्यक्ति इस अमृत का प्रयोग करके लाभ उठावे और लोगों में प्रचार करे, जिससे सब लोग सुखी हो।

मालूम होता है हमारे ऋषि मुनि लोग इस क्रिया को पूर्णरूप से जानते थे। उन्होंने स्वास्थय की रक्षा करने वाले पदार्थों को नित्य के पूजा—विधान में रख दिया था। जिससे लोग उन्हें भूल न जाये और नित्य उनका अवश्य प्रयोग करे। जैसे तुलसीदल, बेलपत्र, चन्दन, गंगाजल, गोमुत्र, तिल, धूप दीप रूद्राक्ष वगैरह वगैरह। इसी प्रकार पूजाओं में जौ का प्रयोग और जौ बोकर उसके पौवे उगाना भी पूजा का एक विधान रक्खा था, जो प्रथा आज तक किसी न किसी रूप में चली आ रही है। गेहूं और जौ में बहुत अन्तर नहीं है।

बहुत सम्भव है, जौ के छोटे छोटे पौधों में जीवनी शक्ति अधिक हो, और सम्भव है इसी से पूजा में जौ को ही प्रधानता दी गई हो परन्तु हम लोग इन स्वास्थयवर्धक चीजों को केवल पूजा की सामग्री समझकर उनका नाम मात्र को प्रयोग करते हैं—स्वास्थय के विचार से यथार्थ मात्रा में उनका सेवन करना हम भूल ही गयें हैं।

हमारा विचार है कि गेहूं की भांति अन्य पदार्थों में भी इसी प्रकार के तत्व मौजूद है, जिनकी चर्चा फिर कभी करेंगे।

---

६ | सच की राह: अहिंसा की राह

जिन दर्शन तत्व के एक वक्ता से पूछा गया—'अहिंसा क्या है ?'

'जो हिंसा नहीं है।'

'अर्थात्—'

'हिंसा का न होना ही अहिंसा है।'

'और हिंसा क्या है—'

'आत्म गुणों का विघात होना ही हिंसा है। विघात समझते हैं न। आत्म गुणों की समाधि......'

'और अहिंसा—'

'आत्म गुण जब उदीप्त होते हैं तो अहिंसा का आचरण होता है। जिन कार्यों विचारों से मन वाणी और कर्मों की जिन प्रवृतियों से आत्म गुणों का ह्रास होता है वे सभी प्रवृतियां हिंसा के अन्तर्गत आती है। और जिन प्रवृतियों से आत्मगुणों की सुरक्षा होती है वे प्रवृतियां चाहे कुछ भी रही हों, उनका कोई भी नाम हो, कोई भी रूप हो। वे सब अहिंसा के अंग हैं। सबका अहिंसा में समावेश है। अर्थात् हाथी के पांव में सबका पांव। सब गुणों का समावेश एक धर्म में। तभी तो अहिंसा धर्म को परमो धर्मः कहा जाता है।

तो हिंसा है:—

आत्म घात।

आत्म गुणों का घात।

ये क्रियायें कई प्रकार की हो सकती हैं—

(१) पर दुख ताड़ना।
(२) असत्य भाषण।
(३) चोरी।
(४) दुराचार से पूर्ण आचरण।
(५) संग्रह की गलत आदत।
(६) स्वार्थ मरता।

और अहिंसा के गुण हैं—

—सत्य
—अचौर्य (चोरी न करना)
—ब्रह्मचर्य
—अपरिग्रह

अहिंसा इन्हीं के कारण परमो धर्मः बनती है।

हमें इन्हीं तत्वों का विवेचन करना है। मगर इससे पूर्व कुछ जानकारी लेनी है उस पाप के कारणों कि जिनकी वजह से मनुष्य पाप के प्रति खिचता है; आकृषित होता है।

पाप—

सब पापों की शुरूआत उस अर्कषण से होती है, जो पाप की ओर उन्मुख करता है। मगर वास्तव में पाप की शुरूआत उस आकपण की भांति होती है जो सबको दुख देकर प्रारम्भ होती है। यहां हम संक्षेप में दो बोध कथायें प्रस्तुत करना चाहेंगे। पहली कथा है पाप की, दूसरी है त्याग की। इन दो कथाओं से हमें हिंसा और अहिंसा का बोध हो सकेगा।

(खूनी मल्लाह की आत्मा)

इस काव्यात्मक बोध कथा की शुरूआत उमंग भरे दिन से होती है, जब सब कुछ स्पष्ट था, साफ था, बिखरा हुआ था और एक जहाज बन्दरगाह से विदा ले रहा था।

जहाज में उन दिनों यात्रा सम्पन्न करने के लिये बादबान

होते थे, और मल्लाह दाहू बल से ही यात्रा सम्पन्न करते थे। बन्दरगाह पीछे छूट गई। और सामने आ गया विशाल अथाह समुद्र। दिन रात की छांह पड़ती और जहाज अचानक अपनी गति से आगे बढ़ता जाता।

अचानक एक दिन जहाज पर समुद्री चिड़ियाओं का दल आ गया। और वे मल्लाहों के मनो विनोद का कारण बना। मगर एक मल्लाह था कुटिल। वह गुलेल लाया और उसने एक चिड़िया को गिरा दिया। सिर्फ़ कौतुहल वश। या मनो-रंजन के लिये। मगर यह हिंसा उसके विनाश का कारण बनी। उसके सभी यात्री मौत की गोद में सो गये। मगर वह अकेला अपने पाप का दुख भोगने के लिये जिन्दा रहा। उसे जीवन में मृत्यु से बदतर जिन्दगी का बोध होना था। वह होकर रहा। मृत्युपर्यन्त वह इस आग में झुलसता रहा कि उसने एक निर्दोष समुद्री चिड़िया का खून किया था।

ऐसा माना जाता है कि पाप के चार चरण होते हैं। चार स्थितियां कहें जैसे पहली बार पाप का आर्कषण जीव को अपनी ओर खिचता है।

दूसरी बार उसे स्वतः पाप की ओर जाने में झिझक होती है। वह स्वयं पाप से घृणा करना चाहता है। मगर पाप का आर्कषण भी तो कम नहीं होता।

संकोच कम होना तीसरी स्थिति है।

और संकोच का त्याग करके पापरत हो जाना चौथी स्थिति है। इसी प्रकार हम सभी जीवों को भी बांट सकते हैं—

प्रथम श्रेणी : पाप रत ! पाप में फंसे। अर्थात् सबसे निकृष्ठ श्रेणी।

दूसरी श्रेणी:—संकोच और पाप के बीच में रहने वाले।

तीसरी श्रेणी:—पाप से भी भय मानकर भी, जो कभी कभी स्थिति वश पाप कर ही डालते हैं।

चौथी श्रेणी:—जो पाप से सदैव दूर रहते हैं।

इनको क्रमश: नाग दिये गये हैं:—

(१) मिथ्या दृष्टि।
(२) गृहस्थ।
(३) निष्ठातरन श्रावक।
(४) मुनिवर।

इन सीढ़ियों को पार करने के लिये आवश्यक है कि इस परमो धर्म का स्वरूप समझा जाये। जो व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र इस स्वरूप को समझ गये हैं, वे वास्तव में इस भवसागर को पार करने में समर्थ हो गये। धर्म तो वास्तव में कर्तव्य है। और जिन धर्म इस बात की पुष्टि करता है कि अहिंसा के पावन मार्ग को पकड़ कर अपने कर्मों का त्याग करके इस जन्म मरण, आगमन गमन से मुक्ति पायें। और इसका मूल आधार है अहिंसा। अर्थात् किसी को न सताना। किसी को दुख न देना। अगर हम किसी को सताते हैं, दुख देते हैं तो वस्तुत: अपने मार्गों को अवरुद्ध करते हैं।

ठीक उस खूनी मल्लाह की भांति।

उसने एक समुद्री चिड़िया को मारा।

और परिणाम—

परिणाम हुआ सभी साथियों की मृत्यु।

उसकी मृत्यु दुख से भरी जिन्दगी।

हर पाप की यही सजा होती है। यही परिणाम होता है, यह बात दूसरी है कि कुछ का पता संसार को चल जाता है और कुछ का नहीं।

(त्याग की मूर्ति: तोता)

एक हरा भरा जंगल था।

जंगल में मंगल करने वाले पक्षी वह चहाते ही रहते थे।

इस जंगल में एक विशाल वट वृक्ष था।

इस वृक्ष पर बसेरा लेने वाले हजारों पक्षी सुबह सूर्योदय पर ही उठकर चह चहाने लगते। दूर दूर तक दाने की तलाश में जाते और फिर लौट आते। संध्या होती तो इसी पर बसेरा लेते।

समय बीतता गया।

एक दिन—

जंगल का दुर्भाग्य उदय हुआ। पशुवत आचरण करने वाला एक शिकारी वहा आया और उसने उस विशाल वट वृक्ष को अपना निशाना बनाया। उसका जहर से बुझा बाण लगते ही बहुत से पशु मर गये। बहुत से पक्षी घायल हो गये और वह विशाल वट वृक्ष सूखकर पिंजर हो गया। उसके हरे भरे पत्ते, लचकीली डालियां न जाने कहां चली गई। अब तो महज एक ताना बाना रह गया था। और ऐसे बुरे समय सभी पक्षी दूसरे पेड़ों पर जाकर बसेरा ले चुके थे। और वह पेड़ एक वीरान खण्डहर से भरपूर कोठर का रूप धारण कर चुका था। मगर एक तोता—

वह वहीं रहता था।

उसी जीर्ण पेड़ के कोठर में।

सोचता था सुखमें उसके साथ रहा है, तो दुख भी इसी के साथ कटना चाहिये।

वर्षा आती चली जाती। सब ओर हरियाली फैलती, मगर वह विष खाया वह पेड़ न हरा भरा होता न उस पर बसन्त का मधुर पराग आलोकित होता।

एक दिन—

इन्द्र देवता जिन्हें वर्षा और बादलों का देवता भी कहा जाता है, उस जंगल में पधारे।

तोते को उस जीर्ण, मृत प्रायः पेड़ के निकट देखकर उन्हें दुख ही हुआ। साथ में आश्चर्य भी। उन्हें उस तोते की बुद्धि पर तरस आया जो पूरे हरे भरे जंगल को छोड़कर उस मृत प्रायः उस वृक्ष की छांह म बैठा था। मगर जब उन्हें पूरी हकीकत मालूम हुई तो वे प्रसन्न हो उठे।

—वाह। ऐसा होना चाहिये त्याग।

—ऐसा होना चाहिये भाई चारा।

और उस त्याग, भाई चारे से अभिभूत होकर उन्होंने तोते से आग्रह किया कि वह कोई भी वर मांग ले।

—आप देंगे।'

'हां, हां। हम वचन बद्ध हैं।

'तो नाथ।'

'हा, हां कहो।'

'मेरी आतेय इच्छा यही है कि आप इस पेड़ को पहले की भांति हरा भरा कर दें—

'बस।'

'हां प्रभू।'

'अपने लिये तो कुछ मांगो।'

'नहीं प्रभू। मह मेरे लिये ही है।'

त्याग की कथा का बोध इतना है कि दुख त्याग में भी है और पाप में भी। मगर दोनों में अन्तर है। अन्तर को स्पष्ट करने के लिये उदाहरण दिया जाता है कि पाप की राह तो एक ढालूदार पथरीली भूमि है व्रत इसके मुकाबले उबड़ खाबड़ पहाड़ की चढ़ाई है। पाप हमारे संस्कार बन जायें तो हम कुछ भी करने से नहीं डरते।

अहिंसा को पावन धर्म मानने से, स्वीकार करने से ही नहीं अपितु उसे अंगीकार करने से ही मनुष्य आवागमन के मार्ग से छुटकारा पा सकता है। अहिंसा वास्तव में आत्मा का वह नैसर्गिक प्रकृति से उन्मुक्त गुण है जिसके विषय में एक प्रसिद्ध विद्वान ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

श्रावक और मुनि इन दोनों की पाप त्याग की इस प्रक्रिया के कारण समस्त आचार विचार दो रूपों में विभक्त हो जाता है। एक रूप उसका वह है जिसमें हिंसा, झूठ, चोरी अब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पापों का और संक्षेप में कहा जाये तो सम्पूर्ण हिंसा का सर्वथा मन, वचन और शरीर सभी प्रकार से त्याग किया जाता है पापों के सर्वथा त्याग का यह संकल्प मुनियों द्वारा है। इसका रूप वह है, जिसमें हिंसा झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इनका सर्वथा त्याग नहीं किया जाता। सांसारिक दायित्वों की कुछ विवशतायें हैं, जिनके कारण सर्वथा त्याग नहीं किया जा सकता अतः मर्यादित त्याग किया जाता है। पापों का यह एक देश त्याग श्रावकों के होता है। पापों के सर्वथा त्याग का मुनियों का संकल्प महाव्रत कहलाता है और एक देश त्याग का श्रावकों का संकल्प अणुव्रत कहलाता है।

व्रत क्या है ?

व्रत का अर्थ है— भोज्य सम्बन्धी सभी विषयों का संकल्प पूर्वक नियम करना अर्थात हिंसादि पापों से निवृत होना और दयादि शुभ कार्यों में प्रवृत होना।

भोगों का त्याग मगर कैसे ?

क्या भूखों मरना भोगों का त्याग करना है ?

नहीं ?

यदि ऐसा होता तो कारावास में दन्ड पाने वाले अपराधी

अपार सुख सँचित कर लेते ।

शास्त्रों का कथन है कि—

किसी की इच्छाओं का नियमन जब दूसरे व्यक्ति या परिस्थिति द्वारा होता है तब वह व्रत नहीं दण्ड कहलाता है। जब इच्छाओं का नियमन स्वेच्छा से होता है तो उसे व्रत या संयम कहते हैं। कैदी जो अपराध के कारण दण्ड पाता है और भूखा रहता है तो वह व्रत नहीं कर रहा। उसे भोजन की इच्छा तो है मगर उपलब्ध नहीं है। भिखारी को यदि भीख न मिलने के कारण भूखा रहना पड़े यह भी व्रत नही है। व्रत है उस व्यक्ति के लिये जिसे भोजन प्राप्त है, जो भोजन कर सकता है, मगर करता नहीं है। क्यों—

आदर्श से प्रेरित होकर।

आत्म शुद्धि की भावना से भरे होने के कारण।

इस प्रकार यह कहना कि त्याग और पाप दोनों में आत्म क्लेश है। वास्तव में यर्थात् रूप में सही है। लेकिन पाप पतन के गड्ढ़े में ढकेलने का उत्तर दायित्व लेता है, मगर त्याग कठोर तप मार्ग से उत्कर्ष की ओर ले जाता है। और इनका एक सूत्र है, एक राह है। और वह राह है अहिंसा ी राह।

अहिंसा का आदर्श और अणुव्रत

सब जानते हैं पतन की ओर जाने में विशेष श्रम नहीं लगाना पड़ता। जब कि पतन से उत्कृष की ओर जाने के लिये अपार संयम, कठोर परिश्रम की आवश्यकता होती है। इसी कारण सहजता में प्राणी पतन की ओर अग्रसर होता है। कभी क्रोध करने में, स्वार्थ और लालच के लिये सोचना नहीं पड़ता। अकी तो बात ही क्या है। ये वृतियां तो हमारे मन में समाई हुई हैं। जरा सा कोई कारण मिलते ही प्रगट हो जाती हैं।

किन्तु जब कोई हमारा विनाश करे।

हमें त्रास दे।

उस वक्त क्रोध को न आने देना।

व्यापार में अनुचित लाभ मिलता हो और उसे न लिया जाये।

रिश्वत मिल रही हो और न ले।

स्वार्थ बन रहा हो और उसे छोड़ना पड़े। वह भी सहर्ष सहज और बगैर दुख माने। तो यह क्रिया प्रतिरोध की क्रिया है. पतन की ओर आने से रोकने की क्रिया है इस विषय में भी बलभद्र जैन ने कहा है—

'मन को पतन की ओर जाने से रोकने में, इन्द्रियों से अनुकूल विषयों से विरोध करने में जो जोर लगाना पड़ता है वही प्रतिरोध है प्रति ध है और यह प्रतिरोध या प्रतिशोध ही व्रत है। आध्यात्मिक जीवन में आत्म, क्रोध और आत्मशुद्धि करने के लिये मानसिक चंचलताओं और विन्द्रयक वासनाओं से आत्मा को निरन्तर संघर्ष करने के लिये वाध्य होना पड़ता है। मन और इन्द्रियों की वासनाओं के नियमन और उन पर विजय पाने के लिये आत्मा की यह प्रतिरोध शक्ति जितनी प्रबल होगी उतनी ही विजय से आशा और संभावना बढ़ जायेगी। इस तरह प्रतिरोधात्मक साधना का मार्ग यह व्रत विधान ही वस्तुतः आत्म विजय का विधान है।

प्रतिरोध का यह मार्ग निषेधात्मक है। 'अमुक कामयाब है, बुराई है, यह मत करो। वह मत करो, बुराई का यह सतत निषेध व्याहारिक दृष्टि से प्रतिरोध है इसलिये यह व्रत है। विध्यात्मक पहलू हमारे जीवन का जाना पहचाना है, किन्तु वह पहलू वस्तुतः विध्वसात्मक है। प्रतिषेधात्मक पहलू हमारे जीवन के लिये साधना साध्य है, किन्तु यह सृजनात्मक है।

बुराई विध्यात्मक बनी हुई हैं। किन्तु उनके जीवन में कोई श्रृजन निर्माण का कार्य नहीं हो पाता। वे तो हमारे आत्म गुणों का विध्व से ही करती है। क्रोध से शान्ति का विकाश होता है। अहंता से मृदुता, नष्ट होती। कपट ऋत्तजुता से नाश करता है, लोभ आत्मा की सुचिता पर आघात करता है। इस प्रकार बुराइयां और पाप सारे सद्गुणों के विनाशक हैं व्रत प्रषिघात्मक हैं। किन्तु उनसे आत्म गुणों का विकास होता है। शांति आत्मा में निराकुलता लाती है और निराकुलता ही सुख की जननी है। दुख आकुलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसे जीर्ण मकान की मरम्मत करते समय मिस्त्री कुछ तोड़ता और कुछ बनाता है। उसका यह तोड़ फोड़ का कार्य विनाश का कार्य है किन्तु उस विनाश से ही निवार्ण संभव होता है। विनाश न हो तो निवार्ण असंभव है। व्रत पापों का बुराइयों का विनाश करते हैं। बुराइयों के इस विनाश के ऊपर ही आत्मगुणों के द्वारा विकाश—निर्माण का भवन बनता है। इसप्रकार इच्छाओं के प्रतिरोध का, व्रतों का यह निषेधात्मक मार्ग ही सही अर्थों में निर्माण का मार्ग है। विध्यात्मक है। पाप और बुराइयों का विध्यात्मक मार्ग सही मायनों में विध्वंस और विनाश का मार्ग है।

'पाप विध्यात्मक दीखते हैं। किन्तु वास्तव में वे विनाशात्मक हैं। अतः विनाशक होने से सभी पाप हिंसा हैं। इच्छा के प्रतिरोध का मार्ग निषेधात्मक दीखता है किन्तु वास्तव में वह सृजनात्मक हैं। इसलिये इच्छा प्रतिरोध के सम्पूर्ण काम अहिंसा है। हिंसा पाप हैं और व्रत अहिंसा हैं व्यक्ति समाज का एक घटक है। अनेक घटकों को मिलाकर ही समाज बनता है। समाज में सुव्यवस्था, शान्ति, सौहार्द, सृजन का वातावरण बना रहे। इसके लिये जिन नैतिक मूल्यों की आवश्यकता है,

उसके लिये अपेक्षा की जाती है कि समाज में बुराइयां न हो। ये बुराइयां है—वर्ग वैमन्य, संघर्ष, संयम की मनोवृत्ति ऊंच नीच की भावना, दुराचार, झूठ, चोरी, हत्यायें, युद्ध आदि। इन सारी बुराइयों की जड़ है समाज का भौतिक दृष्टि कोण। जब भौतिक दृष्टि कोण के कारण समाज में भौतिक सुख की आकांक्षा अतियंत्रित रूप से वढने लगती है, तब समाज में बुराइयां पनपने लगती हैं, समाज में जब भौतिक मूल्यों का महत्व अयधिक बढ़ने लगते हैं। तब सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक सारा ही वातावरण उस दृष्टि कोण से मरने लगता है और भौतिक मूल्यांकन का सारा आधार आर्थिक हो जाता है। उस आर्थिक आधार पर सारा सामाजिक और राजनैतिक ढांचा खड़ा होता है। इसके अर्थ के नीचे नैतिक मूल्य दब जाते हैं।

आज विश्व में भौतिक दृष्टि कोण का प्राधान्य होने के कारण अर्थ की प्रतिष्ठा अधिक है। नैतिक मूल्यों की उपेक्षा है। समाज का सारा व्यवहार ही अर्थ मूल्क बन गया है। अर्थ जीवन मापने का ही माध्यम नहीं है, अपितु प्रतिष्ठा, उन्नति, भौतिक सुखों का एक मात्र सधन अर्थ बन गया है। भौतिक सुखों और भोगों की अन्यिलता एवं उनकी अतियंत्रित आकांक्षा का जो महत्व स्थापित कर दिया है, उसके कारण अर्थ संग्रह की लालसा तीव्र हो उठी है। हर व्यक्ति अनुभव करने लगा है कि अर्थ हो तो समाज में प्रतिष्ठा हो सकती है। अर्थ हो तो भौतिक उन्नति के सारें मार्ग खुल सकते हैं। इस दृष्टि कोण के कारण हर व्यक्ति अर्थ संचय के लिये व्यग्र हो उठा है।

'अर्थ संचय के इस भौतिक दृष्टिकोण में नैतिक मूल्यों की उपेक्षा हो गई है। इसलिये अर्थ संचय करते हुये व्यक्ति नैतिकता की आवश्यकता को नहीं समझता। अर्थ संचय करना है,

चाहे वह नैतिक साधनों से हो या अनैतिक साधनों से । इसलिये समाज में भ्रष्टाचार पनपने लगा है । शीघ्र से शीघ्र लखपति एवं करोड़पति बनने की धुन में व्यक्ति की दृष्टि केवल अर्थ की ओर ही रहती है । अर्थात् अर्थ साध्य बन गया है । अर्थ ने भौतिक सुख सुविधाओं का विराट स्तूप लाकर खड़ा कर दिया है । वे भौतिक सुख सुविधायें इन्द्रियों की अनियंत्रित इच्छाओं और वासनाओं की पूर्ति का साधन बन गई है ।

'अब जीवन जीने का नाम नहीं, विलास और भोग के अनियंत्रित भोज का नाम जीवन हो गया है। इस प्रवृत्ति ने दुराचार और अनेक विद्या साधनों के आविष्कारों को प्रोत्साहन दिया है उसके रूप, सज्जा, सौंदर्य, प्रसाधन, उपन्यासनाटक, सिनेमा, शराब भोजन की विविध सामग्री शिक्षा, परिधान का ढंग, और इनके आधार पर खड़ा हुआ सारा सामाजिक वातावरण उसे अभी तो मानसिक, वाचनिक और कायिक दुराचार व्यभिचार के साधन बन गये हैं ।'

दुराचार की इस स्पर्द्धा ने ही नीति, अनीति से अर्थ संचय की इस भावना ने समाज में हत्या, डांके बाजी, लूटमार, रिश्वत, बलात्कार चोर बजारी आदि को पूर्ण शक्ति से बढावा दिया है ।

अर्थ संचय के साधन सर्व-सुलभ होते हुये भी सर्व साध्य नहीं है । हर व्यक्ति अर्थ संचय के लिये उन साधनों का उपयोग नहीं कर पाता । इसलिये कुछ लोग समाज में घातक बन जाते हैं और कुछ निर्धन । अर्थ संचय की यह परम्परा दृष्टि पूर्ण भले ही हो किन्तु इस परम्परा को बनाये रखने, उसे प्रोत्साहन और सुविधा देने का दायित्व विभिन्न राजनैतिक प्रणालियों और राजकीय व्यवस्थाओं का है । इससे जिनके पास धन संचय हो जाता है, धन संग्रह के अनेक स्त्रोत उनके पास

आ जाते हैं। दूसरे अनेक लोग उनसे ऊपरी जीविकोपार्जन मे सुविधा के अनुग्रह के लिये अनुरोध एवं अपेक्षा करने लगते हैं। इससे उनमें धनिक धर्म भी आ जाता है। उसमें अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझने की वृति भयंकर वेग से जाग उठती है। वह दूसरों की विवशता और असहायता से अनुचित लाभ उठाने के लिये प्रेरित होते हैं। और फिर शोषण का एक भयानक दौर चल पड़ता है। धनिक व निर्धन के इस भेद और शोपरण के इस दौर से समाज में वर्गभेद, वैमन्य, कटुता और फिर वर्ग संघर्ण का दौर चल पड़ता है।

व्यक्ति की ये व्यक्तिगत प्रकृतियां जव एक राष्ट्र के नाम पर सामूहिक रूप में होने लगती है तब ये उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद युद्ध और शोपण को जन्म देती है। तब सवल राष्ट्र निर्बल, साधनहीन और अशक्त राष्ट्रों को गुलाम बना लेता है उनके सारे आर्थिक स्त्रोतों पर एकाधिकार करके उनका शोपण करते हैं। उनकी सारी सांस्कृतिक और जतिय विशेषताओं को नष्ट करके अपनी सांस्कृतिक और जातिय परम्पराओं को वलात् थोप देते हैं।

गुलाम राष्ट्र स्वतन्त्र होने के लिये प्रयत्न करते हैं। निर्वल राष्ट्र सवल बनने का प्रयास करते हैं। इस प्रयत्न में जातीय और राष्ट्रीय विद्वेप संघर्ष और युद्ध को उत्तेजना मिलती है, युद्ध में जो हार जाता है वह फिर युद्ध की तैयारी करता है। वह शत्रु राष्ट्र के राज्यों से अधिक संहारक शस्त्रों के अनुसंधान निर्माण के लिये प्रयत्न करता और इस प्रकार शस्त्रों की प्रति स्पर्द्धा चलती है। शस्त्रों की स्पर्द्धा से फिर युद्ध और युद्ध से फिर स्पर्द्धा। युद्ध विज्ञान और शस्त्र स्पर्द्धा का यही [illegible]

हैं।

युद्ध से केवल मानव संहार ही नहीं होता, प्रकृति का जीवनोपयोगी भंडार ही नष्ट नहीं होता, अपितु उससे प्रतिहिंसा की एक परम्परा का ही जन्म होता है। और इससे भी अधिक हानि जो होती है वह है समाज में नैतिक मूल्यों की उपेक्षा। युद्ध के समय सारे राष्ट्र का ध्यान युद्ध विजय के लिये केन्द्रित हो जाता है। सारा राष्ट्र युद्ध में जाने वाले सैनिकों को नैतिक और अनैतिक और अनैतिक सुविधायें प्रदान करता है जान को हथेली पर रखकर घूमने वाले उच्छृंखल भी हो जाते हैं। युद्ध में भयानक हत्यायें करके उनका हृदय क्रूर हो जाता है।

परिणाम स्वरूप नागरिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है सारे कल कारखाने युद्ध सम्बन्धी के सामग्री उत्पादन में लग जाते हैं। अतः नागरिकों की उपयोग्य सामग्री का उत्पादन कम हो जाता है। इससे बाजार में माल और उसकी मांग का असन्तुलन हो जाता हैइस सन्तुलन जन्य सुविधाओं को दूर करने के लिये सरकार ऐसी उपभोग्य सामग्री पर एकाधिकार करके उसका नियंत्रण थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में सौंप देती है। यह अधिकार पाने के लिये सरकारी कर्मचारियों को रिश्वतें दी जाती है। अधिकार पाने के बाद उन कर्मचारियों की सहायता से मुनाफाखोरी, चोर बाजारी और अनुचित संग्रह होने लगता है। सरकारी कर्मचारियों और व्यापारियों का जीवन स्तर असीम आय के कारण उठ जाता है। दूसरी ओर नागरिकों को उपभोग्य सामग्री न मिलने के कारण असन्तोष पैदा हो जाता है। इससे हत्यायें, डाकेजनी और लूटमार आदि बढ़ जाती है।

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद सैनिक जब पुनः नागरिक जीवन में लौटते हं। तब युद्ध के समक्ष के अभ्यास के कारण क्रूर बन जाते हैं। अनैतिक कार्यों के वे अभ्यस्त हो जाते हैं

जिसे वे नागरिक जीवन में भी नहीं छोड़ सकते। सरकारी कर्मचारी और व्यापारियों ने युद्ध के काल में रिश्वत और मुनाफाखोरी से जो अनाप शनाप कमाया था और अपना जीवन स्तर जिसके कारण ऊपर उठा लिया था, वह युद्ध के बाद रह नहीं जाता। तब वे दूसरे अनैतिक भागों को सहारा लेकर प्रयास करते हैं कि अपनी आय और उसके स्तर को बनाये रखे, इससे सरकारी कर्मचारियों में रिश्वत की प्रवृति बढ़ जाती है। व्यापारी माल में मिलावट करने लगते हैं और इस प्रकार जनता का जो वर्ग हत्या और लूटमार कर अभ्यस्त बन गया वह अपने उस अभ्यास को छोड़ा नहीं। इस तरह युद्ध के बाद की नैतिक स्थिति अत्यन्त भयंकर हो उठती है। आकांक्षायें असन्तोष और अतृप्ति भयंकर रूप से प्रबल हो उठती है।...'

इस बुद्धि पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि अहिंसा को छोड़ने के कारण ही संसार पतन के गर्त में गिरता चला जा रहा है और उसकी अनैतिक इच्छाओं में वृद्धि होती जा रही हैं। सच तो यह है कि हमारी पीड़ाये जो आज हमें घेर रही हैं। वास्तव में वे हमारी ही वृतियों और भावनाओं का परिणाम है। दुख सदा बाहर से आता है और सुख अन्तर की उपज होती है।

अर्थात् भौतिक लालसायें से ही दुख उपजता है। इस प्रकार दो दृष्टिकोण हो जाते हैं—

क- भौतिक ख- आधात्मिक।

अहिंसा कायरता की प्रतीक न होकर प्रतीक होती है आत्म निर्भरता की और इस आत्म निर्भरता में सहायक होते हैं व्रत अर्थात वह व्यैक्तिक साधना जो भौतिक लालसाओं को निग्रमन करे। व्रत नियमन और नियमों को पालना है। इन्हें हम दो भागों में बांट सकते हैं—

(क) महाव्रत (ख) अणुव्रत

महाव्रत की पालना तो संसार के त्याग के बाद ही संभव है, मगर अणुव्रतों को तो व्यक्ति कुटुम्ब, समाज और राष्ट्र और विश्व के अन्दर रहकर पालन कर सकता है। अतः इनका विवेचन आवश्यक रूप से वांछनीय है।

अणुव्रत क्या है ?

कहा जाता है : मन वचन काम से कृत, कारित और अनुमोदना से स्थूल हिंसादि का त्याग ही अणुव्रत है।

स्थूल हिंसा—

अर्थात जो स्पष्ट रूप से हिंसा दीख पड़े। उसका त्याग करना ही अहिंसा अणुवृत कहलाता है।

अर्थात—मन वचन और काम से होने वाली हिंसा का नियमन। और इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य चार अन्य अणुव्रतों का पालन भी करे।

१. सत्याणुव्रत
२. अचौर्य अणुव्रत।
३. ब्रह्मचर्य
४. अपरिग्रह

मगर इन सबमें प्रमुख है अहिंसा अणुव्रत। जिसकी चर्चा हम अब तक करते आये हैं, मगर अहिंसा अणुव्रत का अर्थ क्या है ? अहिंसा अणुव्रत वास्तव में वह नियम है जो प्राणी मात्र को आवश्यक हिंसा से परे रखे।

जो जीव है, वह त्रास पाकर छटपटाता ही है।

मृत्यु का भय किसे नहीं सालता।

कौन सुख के लिये संघर्षशील नहीं है।

जीव जीव है, भले ही वह त्रस्त हो त्रियंच, मनुष्य गति में दुख पा रहा है अथवा देव गति के भोग भोग रहा हो। वह जीव ही है। उसकी हिंसा, उसको त्रास देना सबसे बड़ी भूल है। मगर कुछ अनिवार्य हिंसा होती है।

जैसे कुदरत का नियम है—पककर पेड़ से फल जुदा हो ही जाता है।

दुधारन पशु का दूध निकलना ही चाहिये। मगर हम स्वयं देखते हैं कि दूधारन पशु दूध देते वक्त जो सन्तोष महसूस करते हैं वे अपना जीवन समाप्त करते वक्त नहीं!

सुना है कभी बूचड़ खाने का क्रन्दन।

कसाई बाड़े का आर्तनाद और डेरी में बंधे पशुओं की निर्विकारता में अन्तर है।

जिन लोगों के मन में अहिंसा की विवेक भावना होती है वे उसी विवेक भावना से अभिभूत होकर ही जीवन यापन करेंगे जैसे

१– मन में निर्दयी भावना का न होना। अपितु स्नेह होना।

२– पशु को बांधते वक्त दुर्भाव नहीं होना चाहिये और पशुओं से स्नेह वत व्यवहार हो जैसे—

—कम से कम काम।

—उचित बोझा।

—समुचित आहार।

जैसा कि हम जानते हैं कि जो व्यक्ति मन-वचन-काम किसी भी प्रकार से हिंसा को जन्म देता है, आश्रय देता है अथवा उसका मन कषाय युक्त होना वह हिंसा करने के कारण हिंसक कहलाने का दोषी है और उसका मन इस प्रकृतियों में रूक सकता है—

(१) शराब
(२) मधु
(३) शिकार
(४) कीड़े वाले फल
(५) तान्त्रिक वृति

(६) उत्तेजना के लिए त्रास देना।

हमने प्रारंभ में कहा था कि अहिंसा का पालन करने वाला व्यक्ति सात्विक वृति का होता है। अतः उसे जिस अन्य अणुव्रत का पालन करना पड़ता है वह है सत्य अणुव्रत। सत्य अणुव्रत के विषय में एक महान संत का कथन है—

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरू झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।
उत्तम सत्य वरत पालीजे, पर विश्वास घात नहीं कीजे।
सांचे झूठे मानस देखे, आपत पूत स्वपोस न पेर वे।
पेरवे तिहायत पुरुष सांचे को दख सब दीजिये।
मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा सांच गुण लख लीजिये।
ऊंचे सिंहासन बैठ वसु नृप धर्म का भूपति भया।
वसु झूठ से ही नर्क पहुँचा, स्वर्ग में नारद गया॥

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है:

सांस बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप॥

अथवा

सच और ईश्वर में कोई भेद नहीं। और यह भी कहा जाता है कि अहिंसा और सत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा यदि सिर (हैड) है तो सत्य अंक।

हिंसा होती है असत्य के कारण है।

असत्य······

अर्थात अहिंसा के अभाव में जब हिंसा होती है तो उसका एक कारण होता है प्रमाद। प्रमाद महत्वपूर्ण कारण होता है क्योंकि इसके अनुरूप निम्न प्रमाद उत्पन्न होते हैं—

—क्रोध

—अभिमान

—कपट

—लोभ

—स्त्री प्रसंग

—भोजन सम्बन्धी

असत्य चार प्रकार का कहा गया है—

—जो नहीं है उसे भी कहना।

—जो है उसे छिपा देना।

—जो जैसा है उसके विपरीत कहना।

—जो निन्दनीय हो। अर्थात् निन्दा के योग्य हो, ये तीन प्रकार की हो सकती है—

—जिनमें प्राणियों से पीड़ा हो।

—चुगली, मर्मच्छेदी हास्य, व्यंग, कठोर वचन।

—अप्रिय : अर्थात् ऐसे वचन जिनके कहने या सुनने से भय या शोक उत्पन्न होता है :

मगर इसके बावजूद सत्य की अपनी कुछ मर्यादी है, जिनका पालन हर सत्यवादी व्यक्ति को करना होगा जिनसे—

१.—हिंसक को लाभ न पहुंचे।
सत्य भाषण से हिंसा न हो।

२.—स्त्री पुरूष सम्बन्धी गुप्त आचरण और रहस्य प्रगट करना।

३.—फर्जी दस्तावेज और जाली नोट।

४.—धन का दुर्व्यय नहीं करना।

५.—यदि किसी कि मनोदशा मालूम है तो वह उसे अन्य लोगों के समक्ष हानि पहुँचाने के हेतु प्रगट नहीं करेगा।

इस विषय में अध्यात्मवेदी बाल ब्रह्मचारी प्रद्मन कुमार जी एम. ए. का प्रवचन ध्यान देने योग्य है। उन्होंने नागपुर

में प्रवचन देते हुए कहा था—

प्रवृत्ति धर्म नहीं। वचन व्यवहार की तो बात छोड़ो, जहां पर किसी प्रकार के विचार, विकल्प, तरंग उठें वह भी इस आत्मा का धर्म नहीं। आत्मस्वभाव में एकाग्रता से स्थित हो जाना यह है वास्तविक धर्म। यही है सत्यधर्म। पर इस उत्तम सत्यधर्म के अधिकारी पूर्णरूपेण मुनिजन ही हो सकते हैं। जिन्होंने इस सत्य महाव्रत को अंगीकार किया है ऐसे मुनिजन ही उत्तम आत्मस्वभाव की एकाग्रता रूप सत्य धर्म के पात्र हो सकते हैं पर उससे निम्न श्रेणी में रहकर तो सब प्रकार के वचन व्यवहार करने पड़ते हैं, पर वचन व्यवहार कैसा रहना चाहिये इस पर कुछ दृष्टिपात कीजिये।

लोग अपने धन्धों के विषय में जो भी वचन व्यवहार करते हैं उसमें भी अभिप्रायविशुद्ध रहना ही चाहिए। अपना ऐसा वचनव्यवहार रहे जो स्वपर हितकारी हो। तो सत्यधर्म वह है जो कि सर्व प्राणिमात्र के लिए हितकारी रूप चर्या है। मूलतः सत्य वचन में अभिप्राय की मुख्यता है याने उस बचन में यह लक्षण घटित होना चाहिए कि वह वचन व्यवहार स्वपरका हित करने वाली हो। हितकारी बचन हों। मित अर्थात परिमित वचन हों। और प्रिय वचन हों ये तीन बातें (हित, मित, प्रिय) जिन वचनों में न हों उन्हें सत्य वचन नहीं कह सकते। यदि कोई वचन उन्हें सत्य कहा जा रहा है और वह दूसरे का हित करने वाला वचन नहीं है तो ऐसे वचन को असत्य वचन ही कहा गया है। जैसे कोई व्यक्ति हमसे किसी दूसरे के विषय बुराई कर रहा हो और उस व्यक्ति ने उन बातों को सुन लिया जिसके विषय में बुराई की जा रही थी, अब बुराई करने वाला व्यक्ति तो चला गया, बाद में वह व्यक्ति जिसके प्रति बुराई की जा रही थी, आया और हमसे पूछता है कि बताओ वह व्यक्ति हमारे विषय में क्या कह रहा था ? तो वहां पर सत्य

बात को भी उसे बताना न चाहिए, क्यों कि उन बातों के बता देने से तो उसका दिल दुःख जायगा। 'हालांकि वे वचन यदि उसको सुना देते तो वह सत्य ही बात थी पर इसमें चूंकि स्वपर हितकारता का लक्षण घटित नहीं होता अतः यह भी असत्य ही माना जायगा। अगर किसी के विषय में बुराई की जा रही हो, वह हमसे आकर पूछे कि मेरे विषय में क्या बुराई बतला रहा था? तो हमने कह दिया कि कुछ नहीं। तो यद्यपि बात तो असत्य कही, पर इसे असत्य न माना जायगा। क्योंकि यदि सत्य बोल दिया जाता तो उस जगह तो एक बड़ा अनर्थ हो जाने की सम्भावना थी। परस्पर में वैमनस्य बढ़ जाता। तो अपना वचन व्यवहार हित, मित और प्रिय इन तीन गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए।

एक तो वचन व्यवहार करना ही न पड़े ऐसी भावना रखो, पर कदाचित करना पड़ता है वचन व्यवहार, तो वहां यह देखते रहना चाहिए कि उसमें ये तीनों गुणहितमितता और प्रियता) पाये जा रहे हैं या नहीं। लोग तो अपना वचन व्यवहार कषायसुक्त होकर करते हैं, पर इस असावधानी का परिणाम यह होता है कि जगह विपदायें सहते रहते हैं। यदि अपना व्यवहार सत्यपूर्ण नहीं है कषायों से मलीमस है तो वहां अपने किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती। न लौकिक सिद्धि प्राप्त होगी न पारलौकिक। देखिये सत्य-वचन से ही इस जीवन की शोभा है। यदि जीवन में सत्यता को अपना लिया तो समझो कि मैंने सर्वस्व पा लिया और यदि जीवन असत्यता से रंगा हुआ है तब तो समझिये कि हममें और तिर्यञ्चों में (पशुपक्षियों में)कोई अन्तर नहीं है। जैसे कोई पुरुष मकान तो बहुत अच्छा बनवा डाले और उसमें रहने वाला कोई न हो तो वह मकान तो ऊजड़ कहलाता है ठीक इसी प्रकार यदि

कोई धन दौलत आदिक से खूब सम्पन्न हो परन्तु उसमें सत्यता
न हो तब तो वह जीवन ऊजड़ा ही है।
इस जीवन की शोभा तो सत्य से है शास्त्रों में कहा है
कि 'सत्यं शिवं सुन्दरं' ये तीनों चीजें प्रत्येक चीज में होना
चाहिए। चीज सत्य हो, शिवस्वरूप हो और सुन्दर हो। जैसे
किसी की पत्नी सुन्दर रूपवान है, पर सत्यवती और शिवयुक्त
नहीं है तो उसे कौन चाहेगा ? और कोई स्त्री सुन्दर भी है,
आज्ञाकारणी भी है और शिवरूप नहीं है तो ऐसी स्त्री को भी
कौन चाहेगा और कदाचित पत्नी भले ही कुरूप हो, पर शील से
रहती हो, आज्ञाकारिणी हो तो भी वह सुन्दर कही गई है।
केवल यहां की इस बाहरी सुन्दरता में ही न पड़ जाना चाहिए।
प्रत्येक वस्तु सत्यं, शिव और सुन्दरं इन तीनों ही गुणों से
युक्त होना चाहिए। तो सत्यं शिवं सुन्दरम को प्राप्त ही यही
है सत्य धर्म की शिक्षा।

यदि इस एक सत्य धर्म का ही प्रादुर्भाव इस जीवन में
हो जाय तो समस्त मिथ्या अभिप्राय टल जायेंगे। जब तक
मिथ्या अभिप्राय रहेगा तब तक मन, वचन, कार्य की समस्त
क्रियायें असत्य होंगी और यदि अभिप्राय ठीक है, शुद्ध निर्मल
है तो मन वचन, कायकी समस्त क्रियायें ठीक होंगी। देखिये
कैसी लोगों की धारणा है कि मैं परका पालन पोषण करने
वाला हूं। मैं न होता तो इनका काम ही न चल सकता
था तो यह कैसी मिथ्या बुद्धि है। यह सब असत्यता है। जैसे
कोई कुत्ता चलती हुई गाड़ी के नीचे आ जाय तो वह क्या
भ्रान्ति मचाता है कि मैं गाड़ी चलाता हूं, और कदाचित गाड़ी
रुक जाय तो उसे क्रोध आता है कि यह क्यों रुक गई ? इसी
प्रकार यहां लोगों को ऐसा मिथ्याश्रद्धान है कि मैं धन कमाता हूं,
मैं परिवार का पालन पोषण करता हूं, मैं अमुक संस्था का चलाने

वाला हूं आदि, ये सब मिथ्या बुद्धियां ही तो हैं। इनमें रहकर तो अपना एक असत्य जीवन ही गुजारा जा रहा है। सत्य अभिप्राय यह है कि मैं सब कुछ अपने आपका ही कर सकता हूं किसी परका मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इस प्रकार की यथार्थ श्रद्धा पूर्वक यदि हमारा जीवन व्यतीत होता है तो वह एक सत्य जीवन है।

सत्यता की परख हमें करना चाहिए शान्ति की कसौटी से। सर्वजीवों के प्रति हित की बुद्धि हो तो उस क्रिया में शान्ति बसी है। सर्वपरका हित बसा है तो वह सत्य क्रिया हो सकती है, और यदि यह लक्षण उसमें घटित न हो तो वह सत्य नहीं कहा जा सकता। देखिये—राजा वसु जिनके कि सत्य की बड़ी प्रसिद्धि थी, लेकिन ब्राह्मणी का पक्ष लेकर उन्हें नरक का पात्र बनना पड़ा। कहां तो सत्य की प्रसिद्धि और कहां नरक का वास, यह किस कारण से ? - उसका मुख्य कारण था सिर्फ एक बार झूठ बोलना। एक बार ही झूठ बोल देने का यह फल है तब फिर जो लोग जीवन भर इस असत्यता का ही स्वागत करते हैं उनकी न जाने क्या गति होगी।

यहां तो बहुत से लोग व्यापार आदिक कार्यों में असत्यता को ही अपनाये हुए रहते हैं। आज के युग में तो असत्यता का ही नाच सर्वत्र दिख रहा है। यही कारण है कि आज का मानव नाना प्रकार की आधिव्याधि और उपाधियों का पात्र बना हुआ हैं। हा कोई जमाना था जब कि सत्यता का आदर था। कभी किसी को यह शंका न रहती थी कि हमें कोई ठग लेगा या हमारे साथ बेईमानी का बर्ताव करेगा, पर आज का मानव तो छल कपट बेईमानी आदि कार्य करने में रंच भी भय नहीं करता है। पर जरा सोचिये तो सही कि इस असद्-

व्यवहार का फल क्या होगा ? अरे इसके फल में विकट कर्म-बन्धन होगा नरकनिगोद आदिक की विकट यातनायें सहनीं होंगी। तो कोई ऐसा श्रद्धान मत करें कि मेरे झूठ बोलने के कारण धन की प्राप्ति होती है। अरे ग्राहकों को जब यह विश्वास बना रहता है कि यह तो ईमानदार आदमी है, हमारे साथ वेईमानी न करेगा, यह सच्चा आदमी है तभी वे उससे लेन देन का व्यवहार करते हैं। अगर उन्हें यह पता पड़ जाय कि यह तो झूठ का व्यवहार करता है, वेईमानी करता है तो फिर उससे लेन देन का व्यवहार नहीं करेंगे। तो वस्तुतः धन भी इस सत्यता के ही कारण आता है। तो यदि अपने इस जीवन में सुखी बनना है और आगे के लिए भी अपना भवितव्य सुधारना है तो सत्य को अपनाना होगा। यदि ऐसी बात न होती तो सत्य का नाम आता ही क्यों ? फिर तो असत्यता का ही व्यवहार करने का उपदेश होता। असत्य का व्यवहार करने से तो इस जीवन की भी बरबादी है और भविष्य एक ऐसी घटना है कि एक सेठ सेठानी किसी नगर में रहते थे। उनको एक नौकर की आवश्यकता थी। सो एक पुरूष आया। बोला—सेठजी, हमें नौकरी चाहिए, कहीं बताओ। तो सेठ बोला—कि तुम क्या वेतन लोगे ?—अरे हमें कुछ न चाहिए, केवल रोटी कपड़ा और साल में एक बार झूठ बोलने को मिल जाना चाहिए। सेठ ने सोचा कि इतना सस्ता नौकर और कहां से मिल जायेगा। तो उसने अपने ही घर उसको नौकरी दे दी। अब वह साल भर तो बड़ी अच्छी तरह से रहा, ईमानदारी से काम करता रहा। जब साल पूरा होने में अंतिम दिन था तो वह नौकर से बोला—कि कल हम एक

एक बार झूठ बोलेंगे। उसकी इस बात पर सेठ सेठानी दोनों ने ही कुछ विशेष ध्यान न दिया सबसे पहले वही सेठानी से मिला और कहा—देखिये सेठानी जी सेठजी तो वेश्यगामी हो गये हैं, वह रोज एक वेश्या के पास जाते हैं। तुम्हारी उनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं है। तभी तो देखे तुम्हारे कोई संतान नहीं न। तो हम तुम्हें एक उपाय बताते हैं। उस उपाय को कर लो ताकि वह वेश्या इनकी ओर कभी देखे ही नहीं है। —बताइये उपाय —आप ऐसा करो कि जब सेठ जी सो जावें तो उस्तुरे से इनके एक तरफ की मूछों की हजामत बना दो और एक तरफ खड़े रहने दो, जब रात को यह उस सकल में वेश्या के पास जायेगा, तो वह उनके रूप को देखकर पहिचानेगी भी नहीं और घृणा भी कर लेगी (देखो कुछ उस्तरे इस तरह के भी आते हैं जिनसे सोते हुए में हजामत बना दी जाय और पता न पड़े) तो सेठानी से तो यह कह दिया और उधर सेठ से कहा कि सेठजी आपकी सेठानी तो बदचलन हो गयी है। वह तो एक यार से अपना व्यवहार रखती है। और उसने आज रात को आपके मारने का षडयन्त्र रचा है। तो आज आप सावधानी से सोना, पास में तलवार रख लेना, वह मौके पर काम देगी। नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि आपको अपने प्राणों से हाथ धोना पड़े। अब क्या था जब रात्री हुई, सोने का समय हुआ तो उधर सेठ को निद्रा नहीं आ रही थी। कुछ अवजगे से ही पड़े हुये थे। उधर से उस्तुरा तथा जल लेकर सेठानी आयी, मूंछ बनाने का प्रयास किया तो इतने में ही सेठ की नींद खुल गयी, उसको अपने नौकर की बात पर पूर्ण सत्यता मालूम पड़ी। तो तुरन्त ही सेठ ने सेठानी पर तलवार का प्रहार करने का संकल्प किया। ज्यों ही मारने वाला था त्यों ही नौकर ने तुरन्त आकर सेठ का हाथ पकड़

लिया—बोला यह क्या अन्याय कर रहे हो ? अरे मैंने आपसे कहा था ना कि मैं साल में एक बार झूठ बोलूंगा तो मैंने झूठ बोलकर यह विडम्बना पैदा कर दिया है। अब मुझे अपना वेतन पूरा मिल चुका। तो देखिये केवल एक बार ही झूठ बोलने से कितनी बड़ी विडम्बना खड़ी हो गई। यदि वह नौकर सेठ का हाथ पकड़ न लेता तो सेठानी के प्राण का घात होता, सेठ को भी शूली का दण्ड मिलता तथा उस नौकर पर भी सबका अविश्वास हो गया और फिर उसे कहीं नौकरी नहीं मिली। वह भिखारी बनकर दर-दर ठोकरें खाता रहा। तो अब एक बार ही झूठ बोलने का यह फल है तब फिर जीवन भर जो झूठ बोलने का अपना व्यवहार रखे तो न जाने उसका क्या हाल होगा अब इस असत्य के व्यवहार को खतम करें और सत्य का व्यवहार करके सुखी हों।

गृहस्थजनों के समस्त वचन व्यवहार असत्य कहे गये है, क्योंकि वे परमार्थभूत आत्म तत्व से सम्बंधित वचन व्यवहार नहीं हैं। गृहस्थी में तो आजीवका सम्बन्धी बातें ही हैं, वहां परमार्थ सत्य का व्यवहार तो नहीं हो सकता। पर मोटे रूप से इस सत्यता को ही अंगीकार करें। देखिये-पुराण पुरुषों ने कैसी अपनी सत्यता को निभाया। अगर किसी को कोई अपना वचन दे दिया तो उसे निभाना अवश्य चाहिये। राजा दशरथ का दृष्टान्त बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने केकई को वचन दे दिया था, सो उन्होंने अपने प्रिय पुत्र श्री राम को वनवास का आदेश देकर भरत को राज्य देकर अपने वचन पूर्ण किये, इसी तरह से जब रावण सीता को हर ले गया तो रावण के भाई विभीषण ने रावण से कहा कि तूने अनुचित कार्य किया। तू उनकी सीता वापिस दे दे। जब रावण ने उसका कहना न

माना तो कहा कि मैं असत्य का कभी साथ नहीं दे सकता, मैं तो सत्य का ही साथ दूंगा। सो देखिये—जब विभीषण श्री राम से जा मिला तो श्री राम नें भी उस प्रसंग में वह वचन दिया कि ऐ विभीषण मैं तुझे लंकेश बनाऊंगा। श्रीराम अपने इन वचनों को पूरा करने में प्रत्यनशील रहे। सो जिस समय लक्ष्मण को शक्ति लगी तो उस समय का सम्वाद है कि श्री राम बहुत दुःखी हुए, तो उनके ही साथी ने समझाया कि हे श्री राम आप दुःखी मत हों। हम लोग लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति का निवारण करेंगे। तो श्रीराम क्या बोले—मुझे लक्ष्मण के शक्ति लग जाने का दुःख नहीं, सीता के हरे जाने का दुःख नहीं, पर दुःख इस बात का है कि मैं जो विभीषण को वचन दे चुका हूं कि तुझे लंकेश बनाऊंगा तो मेरे उन वचनों की पूर्ति कैसे हो, इस बात का दुःख है। तो देखिये—पुराण पुरुष ऐसे होते थे जो कि अपने वचनों के बड़े पक्के थे। वे सदा सत्य वचन व्यवहार को ही अंगीकार करते थे। असत्य वचन व्यवहार का तिरस्कार करते थे।

केवल पुराण पुरुषों की ही बात क्या कहें, यहां का ही अभी जल्दी का ही एक दृष्टान्त देखिये—अमेरिका में एक विलियमनोपिया नाम के एक प्रसिद्ध इतिहासकार हो गये हैं। उनके जीवन की एक घटना है कि एक दिन वह कहीं जा रहे थे। सो रास्ते में उन्हे एक लड़की रोती हुई दिखी। उस लड़की से उन्होंने पूछा—बेटी तुम क्यों रोती हो? तो उसने कहा कि मेरी मां ने बाजार से यह मिट्टी का घड़ा मंगवाया था सो लिए जाते हुए मेरे से फूट गया है, मुझे डर कि है मेरी मां मुझे मारेगी इसलिए मैं रो रही हूं। कृपया आप इसे अगर जोड़ सकें तो जोड़ दीजिये। तो वह इतिहासकार विलियम नोपिया कहता

है कि बेटी मैं इसे जोड़ तो नहीं सकता, पर तुम्हें पैसे दे दूं और तुम दूसरा घड़ा खरीद लो यह हो सकता हैं। जब उस लड़की ने पैसे मांगे तो उस समय विलियम नोपिया के पास में एक भी पैसा न था, जेब खाली थी। तो बोले बेटी मैं आज तो तुम्हें पैसे नहीं दे सकता, हां कल यदि इसी स्थान पर इसी समय समय मुझे मिल जावो तो मैं तुम्हें पैसे अवश्य दे दूंगा, अच्छी बात। तो दोनों ही अपने अपने घर चले गये। अब क्या घटना घटी कि सो सुनो उस विलियमनोपिया के घर तार आया उसके किसी इष्टमित्र का—मित्र ने लिखा कि कल के दिन हम अमुक ट्रेन से आ रहे हैं सो आप स्टेशन पर आकर ट्रेन में मिल लेना। अब देखिये वही समय था मित्र से ट्रेन में मिलने जाने का और वही समय था उस लड़की से मिलकर पैसे देने जाने का। क्या करे वह ? तो उसने अपना निर्णय यही किया कि मुझे अपने वचन निभाना चाहिये सो मित्र के लिए चिठ्ठी लिखकर एक नौकर को उससे मिलने के लिए भेजा। चिट्ठी में यह लिख दिया कि मित्र मैं बहुत ही आवश्यक कार्य में फंसा हूं, आने का बिल्कुल अवकास नहीं है, और खुद उस लड़की के पास पहुंचकर उसे पैसे देता है। तो देखिये किस तरह से उसने अपने दिये हुए वचन की रक्षा की। सत्य का ही तो यह पालन है विवेकी पुरुष सदा सत्य का ही स्वागत करते हैं। चाहे तन, मन, धन, वचन सर्वस्व अर्पित करना पड़े पर वे अपने सत्य धर्म का पालन करने से नहीं चूकते।

सत्य धर्म का पालन करने का फल अनूपम होता है, इस सम्बन्ध का एक और भी दृष्टान्त देखिये—कोई एक राजा का पुत्र था। उसे चोरी करने की आदत पड़ गई थी। तो उसकी

बुरी आदतों के कारण राजा ने उसे घर से निकाल दिया। उसे कहीं किसी मुनिराज से मिलन हो गया। तो मुनिराज से कहता है वह राजपुत्र कि महाराज मैंने अपने जीवन में बड़े पाप किये, चोरी की, जुवा खेला, शराब पी, मधुमांस सेवन किये, मुझे बड़ी बुरी लटें पड़ गयीं हैं। ये मुझसे नहीं छूटती। सो कृपा करके आप मुझे कोई ऐसी बात बताओ कि जिससे हम सही मार्ग में लग सकें। मुनिराज बोले ठीक है बेटे, तुम आज से सत्य धर्म का पालन करो। झूठ न बोला करो। —बड़ी अच्छी बात। उस राजकुमार ने उस दिन से सत्य को ही अपनाया, पर चोरी करने की लट तो थी ही। सो एक बार गया राजा के यहां चोरी करने के लिए सो जब महल के द्वार पर पहुंचा रात्रि के समय में तो पहरेदार ने रोक दिया, पूछा कि तुम कौन हो ? कहां जा रहे हो ? तो उसने सत्य बोल दिया कि मैं एक राजकुमार हूं और राजा के महल में चोरी करने जा रहा हूं। तो पहरेदार ने यह सोचकर कि अरे कहीं चोर लोग खुद थोड़े ही कहते कि हम चोरी करने जा रहे हैं यह तो कोई राजा का ही रिस्तेदार मालूम होता है तो उस पहरेदार ने अन्दर जाने का आदेश दे दिया। तो राजाओं के यहां तो प्राय: ऐसा ही होता है कि रात को सोने के समय सब वस्त्राभूषण उतार कर रख दिये जाते हैं और दूसरे कपड़े पहिन लिये जाते हैं तो वह राजपुत्र महल में जाकर क्या करता है कि राजसी वस्त्रों को पहिनता है, आभूषणों को पहिनता है और सारे वस्त्राभूषणों को वह लेकर महल से बाहर निकलता है। और पहरेदार से कहता है कि मेरे लिये कोई अच्छा सा घोड़ा घुड़साल से ले आओ। तो पहरेदार ने यह जानकर कि यह तो राजा का ही कोई खास आदमी है, घुड़साल गया और

अच्छा सा घोड़ा दे दिया, पर वह राजपुत्र कुछ थका हुआ सा था इसलिये अन्यत्र कहीं न जाकर उसी घुड़साल में सो गया। प्रातः काल जब सभी की निद्रा खुली तो देखा कि सारे के सारे वस्त्रा भूषण सब गायब। उनकी खोज होने लगी। परन्तु खोजते हुए वह राजकुमार मिल गया तो राजा ने उससे सारी घटना पूछी तो उसने सही सही बात बता दी। आखिर राजा ने वहां यहीं निर्णय किया कि हे राजपुत्र तुम अब कहीं मत जाओ। तुम तो इस मेरी लड़की से विवाह करो और सुख पूर्वक अपना जीवन बिताओ। पर वह राजपुत्र बोला— कि जिस मुनि राज के कहने से मैंने सत्य धर्म को पाला है उन्हीं के पास जाकर मैं सुख पाऊंगा। आखिर उस मुनि राज के पास वह पहुँचा—बोला महाराज— आपके आदेशानुसार एक इस सत्यधर्म का पालन मैंने किया तो उसका फल मुझे देखने को मिल गया और सारी घटना भी मुनिराज से कह सुनाई और उस राजपुत्र ने मुनिराज से पुनः निवेदन किया कि महाराज आप हमें और कुछ दीजिये। ताकि मेरा कल्याण हो। मुनिराज बोले— बेटे मेरे पास और क्या है, अब मेरे ही जैसे बन जाओ— तो तुम्हारा कल्याण है। तो वह राजपुत्र मुनि हो गया और अपना कल्याण कर गया। देखिये— सत्यधर्म का पालन करने का यह फल होता है। इस असत्य का व्यवहार तो मन, वचन, कायये छोड़ना चाहिये। इस सत्य धर्म से वर्तमान में भी सुख मिलता है और भविष्य में भी। आगम में सत्य के सम्बन्ध में चार बातों का निरूपण किया है (१) सत्य महाव्रत (२) भाषासमिति उत्तम सत्य धर्म और (४) वचन गुप्ति। इनका अन्तर इस प्रकार है कि जैसा पदार्थ है वैसा ही कहना, चाहे वह परि-

मित हो या अपरिमित, वह सब सत्य महाव्रत है। सत्य वचन को परिमित ही बोले अर्थात् हित, मित और प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है। केवल आत्मविषयक वार्ता रहना सत्यधर्म है और वचन मात्र का गोपन करना वचन गुप्ति है। यह उत्तम सत्य धर्म का प्रकरण है, जिससे हमें यह जानना चाहिये कि यदि बोलना ही पड़े तो आत्मविषयक हित मित प्रिय वचन बोलना ही योग्य है अपना जीवन सत्यता । हो, व्यर्थ के असद्व्यवहारों से दूर रहे और वचन व्यवहार अपना ऐसा रखें कि जिससे दूसरों का व अपना हित हो, कल्याण हो खुद का भी विकास हो और दूसरों का भी विकास हो, ऐसा ही वचन व्यवहार होना चाहिये। असत्यता से तो अपना अहित ही है।

देखिये— पहली बात तो यह है कि हम आप आज मनुष्य पर्याय में आये हुए है। सौभाग्य से आज इस पर्याय आना हुआ। अभी तक तो न जाने कैसी कैसी खोटी दुर्गतियों में पहिले रहना पड़ा और वहां के घोर दुःख सहने पड़े। एकेन्द्रिय दोन्द्रिय आदिक की अनेक योनिया ऐसी मिलीं होंगी कि हम आपको वहां अक्षरात्मक वचन व्यवहार की शक्ति ही प्राप्त नहीं हुई थी। आज तो इस ढंग का वचन व्यवहार किया जा सकता है कि जिसका कुछ कहना ही क्या ? न जाने कितने कितने कलात्मक ढंगों से वचन व्यवहार कर सकते हैं। तो इन पाये हुए वचनों का सदुपयोग यही है कि हित मित प्रिय अपना वचन व्यवहार रहे। बुरे वचन, कर्कश वचन तो अपने को भी और दूसरों को भी पीड़ा पहुंचाने वाले होते हैं। देखिये—एक लकड़हारे का बडा प्रसिद्ध दृष्टान्त है। एक लकड़हारा जंगल में लकड़ियां बीनकर ले जाया करता था। उन्हीं को बेंचकर वह अपने परिवार का

पालन पोषण करता था और किसी तरह से गरीबी में अपना समय व्यतीत किया करता था। एक बार एक घटना घटी कि जब वह जंगल में लकड़ियां बीन रहा था तो उसके निकट एक शेर आया। पर जब उसने पास में आकर अपने पैर का पंजा दिखाया तो लकड़हारे को उसमें लगा हुआ कांटा दिखा उस कांटे की पीड़ा को वह शेर सहन नहीं कर पा रहा था। सो लकड़हारे ने उसके पैर में लगे हुए कांटे को निकाल दिया शेर ने बड़ा आभार माना, और लकड़हारे से अपनी भाषा में बोला— ऐ लकड़हारे तुम रोज रोज लकड़ियों का गठ्ठा अपने सिर पर न ले जाकर मेरी पीठ पर लाद ले जाया करो।— बड़ी अच्छी बात। अब क्या था। लकड़हारा उस शेर पर लकड़िया लादकर प्रतिदिन अपने घर ले जाता था। सो लकड़हारा पहले तो कोई १५–२० किलो लकड़ी ले जाता था अब शेर पर वह डेढ़ दो मन लकड़ियां प्रतिदिन लाद ले जाता था उन लकड़ियों को बेच दिया करता था। पहले तो कोई ८ आने की लकड़ियां बेचकर काम चलाया करता था। अब दो चार रुपये रोज का काम होने लगा। यों थोड़े दिनों में लकड़हारा मालामाल हो गया। उनके पड़ोसियों ने एक दिन उससे पूछा कि भाई तुम इतनी जल्दी मालामाल कैसे हो गये? तो उसके मुंह से निकल आया— अजी एक स्याल (गीदड़) मेरे हाथ लग गया है, उसकी वजह से मैं इतनी जल्दी मालोमाल हो गया हूं। इस बात को घर के अन्दर बंधे हुए शेर ने सुन लिया। उन दुर्वचनों की चोट उस शेर के हृदय में बहुत बड़ी लगी। आखिर जब दूसरे दिन लकड़हारे ने जंगल में लकड़ियों का गट्ठा बांधा और शेर पर रखने को हुआ तो शेर बोला— ऐ लकड़हारे इस समय तो बस दो बातें हैं— या

तो तुम इस कुल्हाड़ी का तेज प्रहार मेरे गर्दन पर मारो या मैं तुम्हें खा जाऊंगा। लकड़हारा डरा, कांपा और बोला—हे वनराज, आज हमसे ऐसी क्या भूल हो गई जिससे तुम इस तरह कह रहे हो? तो शेर बोला—बस अब कुछ नहीं कहा जाता, या तो मेरे गले में शीघ्र ही कुल्हाड़ी का तेज प्रहार कर दो नहीं तो मैं तुझे खा जाऊंगा। जब लकड़हारे ने अपने प्राणों का खतरा निश्चय रूप से जान लिया तो शेर के गर्दन में कुल्हाड़ी का तेज प्रहार किया। वह शेर मरता हुआ कह रहा था—ऐ लकड़हारे, तुम्हारी इस कुल्हाड़ी की पैनी धार ने मेरे हृदय में इतनी गहरी चोट नहीं दी जितनी चोट तुम्हारे उन दुर्वचनों ने दी कि मेरे हाथ में एक स्याल पड़ गया है, इसी से मैं मालोमाल हो गया हूं। तो देखिये—दुर्वचन बोलने का यह परिणाम हुआ करता है। अज्ञानीजन व्यर्थ ही खोटे वचन व्यवहार करके अपना भी जीवन दुःखमय बना डालते हैं और दूसरों के लिये भी वे दुःख के कारण बनते हैं।

यह दुर्वचन व्यवहार भी असत्य व्यवहार है। जीवन में जब तक सम्यग्ज्ञान न होगा तब तक सत्य व्यवहार बन ही नहीं सकता इस सम्यग्ज्ञान के द्वारा ही हम आपका कल्याण हो सकता है। जो जीव मिथ्याज्ञान में रहकर अपने खोटे अभिप्रायों से भरा हुआ जीवन व्यतीत करते हैं उनका जीवन क्या जीवन है? उनका जीवन तो एक पशुवत् अविवेक से ही भरा हुआ असत्यताका जीवन है। जब तक अपने आत्मके सत्यस्वरूपकी (निजस्वरूपकी) आराधना नहीं की जाती तब तक तो उसे असत्य जीवन ही समझिये। सत्य जीवन से ही इस जीव का भला है। आगममें चार प्रकार का कहा गया

असत्यवचन है, उसका त्याग करो। (१) जो विद्यमान अर्थ का निषेध करना सो प्रथम असत्य है जैसे कर्म भूमि के मनुष्य तिर्यन्च के अकाल मृत्यु नहीं होती आदि वचन बोलना। (२) फिर जो असद्भूत को प्रकट करना तो दूसरा असत्य है जैसे देवों के अकाल मृत्यु कहना, देवों को मांसभक्षी कहना तथा (३) वस्तु के स्वरूप को अन्य विपरीत स्वरुप वाला कहना सो तीसरा असत्य है। और, (४) गर्हित वचन कहना चौथा असत्य वचन है। सावद्य, अप्रिय और निन्द्य वचन बोलना गर्हित वचन हैं। हमे चाहिए कि चार प्रकार की विकथाओं रूप वचन का त्याग करें। लोक व्यवहार में भी सत्य से ही काम चलता है। लोग बड़े बड़े व्यापार उद्योगधंधे करते हैं तो वहां पर भी जब तक सत्यता है तभी तक ही वहां व्यापार सम्बन्धी आदान प्रदान होता है। जहां एक बार भी असत्यता की पोल खुल गई वहां फिर व्यापार का आदान प्रदान का काम बन्द हो जाता है। तो इस जीवन में भी सत्य का व्यवहार करने में ही अपनी भलाई है।

सत्य से सकल विद्याओं की सिद्धि है तथा कर्मनिर्जरा है। सत्य वचन से इस भव और परभव में जीवन सुखी रहता है। जितनी भी हम आपकी धार्मिक क्रियाये हैं विधिविधान है। वे सब तभी सफल समझिये जब कि उनमें सत्यता का व्यवहार किया जा रहा हो। इसी तरह से व्रत, तप, संयम तपश्चरण आदिक में भी सत्य धर्म का पालन करें तभी जीवन की सफलता होगी। जो सत्य वचन हैं सो ही धर्म हैं। यह सत्य वचन व्यवहार इस भव में इस जीव को सुखी करने वाला है और इसका भविष्य भी उज्जवल बनाये रहने में कारण है। सब धर्मों में मुख्य धर्म है सत्य वचन व्यवहार। अस्तु लौकिक व

पारलौकिक सभी दुःखों से निर्वृत्त होने व सत्य सुख की प्राप्ति के लिए सत्य वचन ही ग्रहण करना योग्य है।

अपना व्यवहार दूसरों के प्रति सत्यता का हो, ईमानदारी का हो, किसी को दगा न दें, किसी के साथ छल न करें जैसे कि एक कथानक आया है कि एक बार कोई पुरूप जब किसी जगल के अन्दर पहुचा तो उसे एक शेर दिखा। वह भय से कांप गया और भागा। तो शेर ने उसका पीछा किया। थोड़ी दूर जाकर वह पुरूप किसी वृक्ष पर चढ़ गया। शेर उस पेड़ के नीचे आ गया। जब वह पुरुष पेड़ पर चढ़ गया तो वहां भी पेड़ पर एक रीछ बैठा हुआ था। अब उस पुरूप के भय का क्या कहना। ऊपर रीछ और नीचे शेर। अब वह शेर उस पुरूप का भक्षण करने के उद्देश्य से उस पेड़ के नीचे ही खड़ा रहा। जब रीछ ने भय से कांपते हुए उस पुरूप को देखा तो बोला—ऐ मनुष्य! तू अब भय मत कर, तू मेरी शरण में आया है, तेरे साथ मैं दगा नहीं कर सकता। थोड़ी देर के बाद में उस रीछ को नींद आने लगी, तो वह शेर पुरूप से कहता है कि ऐ मनुष्य तू इस रीछ को नीचे ढकेल दे, नहीं तो मेरे चले जाने पर यह तुझे खा जायगा। शेर की बात उस पुरुप को पसन्द आ गई तो उसने उस रीछ को ऊपर से ढकेलने का प्रयास किया, पर इतने में ही उस रीछ की नींद खुल गई। अब थोड़ी देर में उस पुरूप को नींद आने लगी तो शेर बोला ऐ रीछ यह मनुष्य बड़ा दगाबाज होता है, देख अभी यह तुझे नीचे ढकेल रहा था, अब इसे तू नीचे ढकेल दे ताकि यह मेरा भोजन बने। तो वह रीछ क्या जवाब देता है कि ऐ वनराज यह मनुष्य चाहे मुझे दगा दे दे पर मैं इसे दगा नहीं दे सकता क्योंकि यह मेरी शरण में आया हुआ है। तो यहां शिक्षा लेने

योग्य बात यह है कि हम जीवन में किसी को दगा न दें, किसी के साथ छल न करें। चाहे कोई दूसरा भले ही हमें दगा दे दे, पर हम दगा न दें।

अपना व्यवहार सत्यतापूर्ण रखें, ईमानदारी का अपना व्यवहार रहे, सत्य जीवन ही एक वास्तविक जीवन है। यह सत्य ही इस भवरूपी गहन अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान है। इस सत्य धर्म का प्रयोजन यहीं है कि खुद को भी शान्ति मिले और दूसरों को भी शान्ति मिले। एक कथा सय घोस की प्रसिद्ध है। वह कहता था कि मैं सदा सत्य बोलता हूं। इस बात की बड़ी प्रसिद्धि भी हो गई थी। उसने एक जनेऊ पहिन लिया और उसमें एक छुरी लटका ली, और यह प्रतिज्ञा कर ली कि अगर मेरे मुख से कभी असत्यवचन निकल जायेगा तो मैं अपनी जिह्वा काट लूंगा, लेकिन एक बार उसके जीवन में क्या घटना घटी कि एक बार किसी सेठ ने अपने चार कीमती रत्न उसके पास रख दिये और कहा कि मैं बाहर जा रहा हूं। जब वहां से वापिस लौटूंगा तो ले लूंगा सो वह उसके पास रत्न रखकर बाहर चला गया। उन कीमती रत्नों को अपने हाथ में आया जानकर सत्यघोष का चित्त चलित हो गया। सोचा कि अब इन्हें उस सेठ को मैं न दूंगा। जब वह सेठ बाहर से लौटकर घर आया तो अपने रत्न सत्य घोष से मांगे पर उसने न दिये। तो वह सेठ उन रत्नों को न मिलते जानकर पागल सा हो गया, उसकी सारी चेष्टायें उन्मत्त जैसी हो गईं। वह गली गली में जब चाहें यही चिल्लाये कि सत्यघोष ने मेरे रत्न ले लिए। जब इस बात का पता राजा को पड़ा तो उसने उस सेठ को अपने महल में बुलाया और सारी बात मालूम की। तो राजा ने सही बात की जानकारी

के लिए एक उपाय रचा। सत्यघोष को अपने महल में रानियों के संग जुवा खेलने के लिए बुलवाया। जब सत्यघोष राजा राजा के महल पहुंचा तो वही जनेऊ और उसमें चाकू लटकी हुई थी। रानियों ने जुवा में उसके जनेऊ और चाकू जीत लिया और वे दोनों चीजें (जनेऊ और चाकू) रानियों ने दासी को दिया और कहा कि तुम इन दोनों चीजों को लेकर सत्यघोष के घर जाओ और इन दोनों निशानियों को दिखाकर उसकी स्त्री से यह कहना कि सत्यघोष ने वे चारों रत्न मंगाये हैं जो कि सेठ जी ने रखे थे। स्त्री ने चारों रत्न निकालकर दे दिये। जब दासी उन रत्नों को निकालकर राजमहल में पहुंची तो सत्यघोष की सारी पोलपट्टी खुल गयी। अब राजा ने उस सेठ की भी परीक्षा की कि वे वास्तव में रत्न उसी के थे या नहीं। सो क्या किया कि बहुत से अन्य रत्नों में उन चारों रत्नों को मिला दिया और सेठ से उन चारों रत्नों को छांटने को कहा। तो सेठ ने जो अपने चारों रत्न थे उन्हें छांट लिया। बस राजा ने सत्यघोष के लिए आदेश दिया कि सत्यघोष के लिए तीन दण्ड दिये जा रहे हैं उनमें से वह किसी भी एक दण्ड को भोगना स्वीकार करे। वे तीन दण्ड कौन से थे? (१) मल्ल के द्वारा ३२ घूसे सहे। (२) थाली भर गोबर खावे, (३) अपनी सारी सम्पत्ति छोड़े। अब इन तीनों दण्डों में से उसने मल्ल द्वारा ३२ घूंसे सहने स्वीकार किये, पर जब मल्ल ने पहला ही घूसा लगाया तो वह टें बोल गया। बोला—बस हम इस दण्ड को स्वीकार नहीं करते। हमें तो थाली भर गोबर खाने का दण्ड दिया जाय। सो जब गोबर को खाने लगा तो एक दो कौर भी गोबर न चला, थाली भर

गोबर की तो बात ही क्या। फिर उसने अपनी सारी सम्पत्ति दे देने का दण्ड स्वीकार किया। अब यहां देखना यह है कि केवल एक बार ही असत्य बोल देने से इतनी बड़ी विडम्बना अपने जीवन में खड़ी हो सकती है तब फिर जो लोग सारे जीवन भर असत्य सम्भाषण करते रहते हैं, अपना असत्य सम्भाषण करते रहते हैं, अपना असत्य वचन व्यवहार रखते हैं उनकी न जानें क्या दुर्दशा होगी। तो सत्यवचनों से ही इस जीवन की शोभा है और उसका महातम्य है। कहा भी है कि—

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदै सांच है, ताके हृदय आप॥

अपने अभिप्राय को विशुद्ध रखना सर्व प्रथम आवश्यक है। सत्य वचनों में अभिप्राय की ही कसौटी रहती है। अपना अभिप्राय स्वपर हितकारी होना चाहिये। एक दृष्टान्त है कि एक कोई पापात्मा पुरुष अपने हाथ में एक चिड़िया लेकर किसी मुनिराज के पास पहुंचा, मुनिराज से कहा कि आज मैं आपकी इस बात की परीक्षा करूंगा कि आप ज्ञानी हैं भी या नहीं। सत्य बोलते हैं या नहीं। सो उसने चिड़िया के गले में में अंगूठा लगाकर कहा—बताओ यह चिड़िया जीवित है या मरी हुई? तो मुनिराज ने सोचा कि यदि मैं कहता हूं कि यह जीवित है सो यह झट अंगूठे से दाब कर मार देगा और इसे मरी हुई बताकर मेरा अपवाद करेगा। साथ ही इस चिड़िया की हत्या भी हो जायेगी। सो यह जानते हुए भी कि जीवित है, यही कहा कि अरे यह तो मरी हुई चिड़िया लिए हो, बस उस पुरुष ने चिड़िया को अपने हाथ से छोड़ दिया,

वह उड़ गयी, और कहा देखिये महाराज अब मैंने समझा कि आप कुछ नहीं जानते। अरे कहां तो जीवित चिड़िया हम अपने हाथ में लिए थे और आप उसे मरी बता रहे थे, आप कुछ नहीं जानते– पर यहां मुनिराज का आशय तो देखिये— अभिप्राय तो देखिये कितना निर्मल था। उस चिड़िया के प्रति कैसा करुणाभाव था। हालांकि उस जगह मुनिराज ने झूठ बोला, लेकिन झूठ बोलने पर भी वहां सत्य ही माना जायेगा झूठ नहीं, यद्यपि मुनिराज ने बाद में प्रायश्चित लिया यह बात अलग है, पर यहां देखना है कि इन वचनों की सत्यता और असत्यता अभिप्राय पर से ही परखा जाती है।

निज आत्मपदार्थ जैसा सत है उसको वैसा ही जानना देखना यहीं उत्तम सत्यधर्म है। हमें आज यह निर्णय कर लेना चाहिये कि उत्तम सत्य क्या है। सो परके आश्रय बिना स्वयं सत् स्वरूप जो आत्मा का चैतन्य स्वभाव है, अनादि अनन्त अहेतुक है, एक स्वरूप है, वही उत्तम सत्य है। इसके अवलम्बन से ही सर्व सिद्धियां हैं। इस आत्म-स्वभाव से अतिरिक्त जो भी वचन हैं वे सब असत्य हैं। इस दुर्लभ मानव जीवन को पाकर इन वचनों का सदुपयोग कर लेना चाहिये।

इस प्रकार हमने देखा कि अहिंसा का आदर्श है सत्य, उसका सपना है वही यथात सपना जिसे गुणी, मुनि, पैगम्बर और प्रवृतक सबने देखा है और सभी यह कामना करते हैं कि प्राणी मात्र में नैसर्गिक गुणों का विकास हो, उसमें अध्यात्मिक गुण रहे और वह दस लक्षणों की पालना करता रहे।

आभार

तो अब प्रारम्भ होता है भगवान महावीर की पचीसवी निर्वाण शताब्दी समारोह के अन्तर्गत लोकोपयोगी पुस्तक माला के तीसरे पुष्प का अंतिम पृष्ठ।

कुंडलपुर के राजकुमार से लेकर अहिंसा परमो धर्मः तक एक भारतीय लेखक होने के नाते मैंने अपने पाठकों को अपने अल्पज्ञान के सहारे जो कुछ प्रस्तुत किया है उसमें जो कुछ अच्छा है, प्रिय है वह उन अनेक विद्वानों मुनिजनों और शास्त्रों से उद्दृत है जिनका उल्लेख स्थाना भाव के कारण नहीं हो पाया। सीमित साधन होने के कारण छापें की भूलें भी रह सकती है। कृपालु पाठकों से अनुरोध है कि वे सुधार कर पढें। अगले संस्करणों मैं भूलें सुधार दी जाती हैं। आशा हैं। आप सभी पूर्ववत स्नेह बनाके रखेंगे।

जयप्रकाश शर्मा,